মোহন মালিকা

হা· ক্রি বালেম

மேலக்கோட்டை ஸ்வாமின் அவர்களுக்கு

பக்தியுடன் அன்பளிப்பு

ஜா. கி. ராமம். 1. 10. 68

मोहन लतिका

लेखिका

हा० कि० वालम्

(बी० ए०, प्रभाकर, विशारद)

मोहन मुरुवल, मोहन मुरली, वल्लभर वाज्ञकै (तामिल)—पाञ्चाली शपथ (अंग्रेजी) आदियों की लेखिका

प्रकाशक

हा० कि० वालम्

अगस्त, १९६३]   [मूल्य २.००

प्रकाशक :
हा० कि० वालम्
C/o पी० एस० के० स्वामी
रफ़िया मनझिल
वोडहाउस रोड
मुम्बई (१)

मुद्रक :
श्री सत्यप्रकाश गुप्ता
नवीन प्रेस, दिल्ली

समर्पण

जिष्णु सहायक मुरली गायक
यादव नायक माधव हे
विष्णु विमोहन वीर धुरन्धर
विनता सुत नुत विश्वम्भर
अक्षय निर्गुण ब्रह्म परम्पर
आदि अनादि अमोघ वर
कृष्ण तुम्हारे भक्त महामणि
कृष्ण चैतन्य के पादों में
दक्षिण भू का भक्ति रसामृत-
पुष्प समर्पित करती हूँ ॥

आशीर्वचनम्

श्री श्री गुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीमती हा० कि० वालम्, बी० ए०, प्रभाकर, विशारद एक तामिल वैष्णव विदुषी हैं। श्री चैतन्य मठ द्वारा प्रकाशित हिन्दी "गौडीय" में इनके लेख और कविताएँ बराबर प्रकाशित होती रही हैं। यह पुस्तक "मोहन लतिका" इन्हीं हिन्दी लेखों और कविताओं का संग्रह है। सबसे पहले भक्तिमती आण्डाल के जीवन-चरित्र का कविता में वर्णन है। एक स्वतन्त्र लेख में भक्तिमती मीराँ और आण्डाल का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। दूसरे एक लेख में भागवतकार वेद-व्यास, अष्टछाप के सुप्रसिद्ध वैष्णव कवि सूरदास एवं आलवार महाकवि विष्णुचित्त के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन हिन्दी पाठकों के समक्ष रखा गया है। दक्षिण भारत में भी अनेक वैष्णव भक्त हुए हैं। उन भक्तों की कुछ कविताओं को भी हिन्दी पाठकों की जानकारी के लिए एक निबन्ध के रूप में छापा गया है।

अन्त में भगवद् भक्ति पूर्ण दो कविताएँ हैं, जो कवयित्री के भक्ति हृदय का परिचय देती हैं। इस आयुष्मती विदुषी को मेरे अन्तःकरण से आशीर्वाद है। इसके हृदय में सदैव भगवद् भक्ति का अजस्र स्रोत प्रवाहित होता रहे, भगवान्

से यही मेरी प्रार्थना है ।

मेरा विश्वास है कि, सुधी पाठक इस पुस्तक से अवश्य ही लाभान्वित होंगे ।

श्री भक्ति विलासतीर्थ

अध्यक्ष,
श्री चैतन्य मठ
श्री मायापुर, नाडिया
दिनांक २७ जून, १९६३

प्रस्तावना

श्री गौरांग महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य की अपार करुणा से, भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र की कटाक्ष वीक्षण्य की कृपा से यह "मोहन लतिका" पुस्तक रूप में प्रकाशित हो रही है। इस में जो लेख और कविताएँ संगृहीत हैं वे सब श्रीकृष्ण चैतन्य मठ, कलकत्ते द्वारा प्रकाशित होनेवाली "गौडीय" पत्रिका में समय-समय पर प्रकाशित हो चुकी हैं। सहृदय सुहृदों ने इन को पुस्तक रूप देने का प्रेम से आग्रह किया था। सो आप लोगों के सामने है यह "मोहन लतिका"। इन लेख और कविताओं को प्रकाशित कर पुस्तक-रूप देने की स्वीकृति व अनुमति ही नहीं किन्तु महार्घ्य आशीर्वाद भी देकर मुझे अनुगृहीत करने वाले श्रीलश्री भक्ति विलास तीर्थ स्वामीजी को मैं सप्रेम हार्दिक कृतज्ञता के साथ प्रणाम करती हूँ। महा पूजनीय स्वामीजी और अन्य आचार्यगण और अन्य चैतन्य मठ के निर्वाहियों को अपना आभार प्रकट करती हुई बार-बार प्रणाम निवेदन करती हूँ।

इस पुस्तक को इतना सुन्दर रूप देकर छपाई का काम सुचारु रूप से करने वाले नवीन प्रेस के अधिप श्री सत्यप्रकाश गुप्ता जी को हार्दिक धन्यवाद प्रकट करती हूँ।

—हा० कि० वालन्

विषय सूची

आण्डाल या भक्ति-लतिका

वन्दना

कविते ललिते कान्त रूपिणी
काव्य-कला-मयी सुन प्यारी।
भर दे वर दे कविता की सुधा
मुझ में महिमामयि, सारी ॥१॥

अक्षर-गर्भित-अर्थ- विलासिनि
अर्थ - सुशोभित - रसाङ्गने।
दक्षिण - भू - की - भक्ति-लता की
कविता कर दूँ वर दे माँ ॥२॥

भक्ति-लता की कलियाँ चुन लूँ
ज्ञान-पयोनिधि की मणियाँ।
'सूक्ति-सुधा' की सुन्दर - गाथा
कहने का बल और वर दो ॥३॥

हिन्दी - नन्दिनि छन्द-विलासिनि,
सुन्दर-वनिते कृपा करो।
मन्द हास-मुख नन्दिनी गोधा
मंजुल-गाथा लिखवा दो ॥४॥

तामिल देश का अमर कथा-रस
हिमगिरि तट पर गूँज उठे।
विमल हिन्दी-शुभ-वाङ्मय-रङ्ग में
सकल कलानिधि नाच उठे ॥५॥

आलवारों की अमर - भूमि की
अद्भुत महिमामय - बाला।
आण्डाल नामक अमल दीप की
आनन्द - छटा दमक उठे ॥६॥

हिन्दी नायकि, राष्ट्र-विधायकि
सुन्दरि, वन्दन लो मेरा।
नन्दित कर दो हिन्द महा भुवि
छन्दमयी बन जय - जय हो ॥७॥

× × ×

भाषा - राज्ञी आ जा
आशा पूरी हो जाय।
भूषा वाणी ही है
पूजा तेरी प्यारी ॥८॥

तामिल - भाषा - माला -
फूलों को चुन प्यारी।
श्रद्धा के साथ तेरे
पादों में डालूं री ॥९॥

गोधा की लीलाएँ
मीरा की जैसी जो।
माधुर्यो से भीगी
माधो की है प्यारी ॥१०॥

सोलह साल की बाला
जो है गायन - शाली।
दीन्हीं भीनी माला
गोपाल पैं जो लोला ॥११॥

जो है प्रेम की भूला
गायी श्याम की लीला।
सो है कवि = कोकिला
तामिल देश की मीराँ ॥१२॥

उसका जीवन गाऊँ
बस क्या आगे बोलूँ।
मुस्क्या दो हे देवि
रस का भार सम्हाल लो ॥१३॥

कोई चूक हो जाये
तो तुम जानो देवि।
माये ब्रह्मा - जाये
आ ओ भाषा - काये ॥१४॥

× × ×

सकल भुवन में है आशिया-खण्ड अच्छा
तदपि भरत-भू है सर्वदा-मान्य स्वच्छा।
अमर नगर श्री भी है नगण्या औ तुच्छा
जयति जयति माता भारताख्या प्रसिद्धा ।।१५।।

हिमय-गिरि-किरीटा इन्दिरा मन्दहासा
उदधि-मधुर-घोषा उत्तमा चित्प्रकाशा।
अमल-शशि-विलासा शस्य-सौभाग्य-भासा
जयति भरत खंडा जन्म-दात्री प्रचण्डा ।।१६।।

सकल-विबुध-वन्द्या चन्द्र-जाज्ज्वल्य-शोभा
कमल-मधु-रसाला कंबु-कंठी विशाला।
अखिल-भुवन-मध्ये अंबिका आदिमूला
जयति जयति गीता शाश्वता भूमि-माता ।।१७।।

× × ×

इसकी प्यारी गोद में हैं पले वे
जिनकी वाणी गूँजती मंजु मीठी।
व्यास, औ वाल्मीकी सरीखे महात्मा
भास औ काली-दास जैसे रसात्मा ।।१८।।

अच्युत, राघव, बुद्ध, वीर और महात्मा
शुक और नारद शंकर जैसे महात्मा।
विद्या-सागर, मैथिली-कोकिल, जयदेव,
चण्डी दास और विल्व मंगल शुभात्मा ।।१९।।

कृष्ण प्यारे कृष्ण - चैतन्य—गौरांग,
वल्लभ, निम्बार्क, मध्व - रामानुजादि
सच्ची ज्योती भासमाना सदा है
अच्छी नहीं तो और क्या है यह भारत ? ॥२०॥

दक्षिण - भू में द्राविड़ी जो पुराना
तामिल - साहित्य है पुनीता-विशाला
सागर जैसे है गम्भीरा रसीला
आल्वारों की पुण्य - भू है प्रसिद्धा ॥२१॥

तामिल वाणी - कोकिला कोमलांगी
नामी बाला जो हुई काव्य - लीला
गोधा वल्ली की कहानी सुना दूँ
माता मान्या भारती तुम पधारो ॥२२॥

जन्म

विल्लिप्पुत्तूर विष्णु-पुरी है अति प्यारी
कल्लोल्लोलित सागर जैसे कमनीया ।
तिरुनेलवेली पास खड़ी है दृढ़ दिव्या
तेनकाशी के पास बिलासा लसती है ॥१॥

श्री देवी का अंबुज-गृह-सी अति रम्या
शोभाधारी सुन्दर नारी सी भव्या ।
नन्दा नन्दा कंसनिकन्दा जगवन्द्या
मन्दरधारी माधव की है मनहारी ॥२॥

द्राविड़ भू को शोभित करती महिमा से
तामिल जनता मानस-दयिता सुपुनीता ।
वैष्णव-ज्योति-विलसित-सुषमा-युत-सत्ता
विष्णु-कला की प्रत्यक्षमयी प्रतिमा-सी ।।३।।

इस नगरी में बसते थे एक भल-मानस
ब्राह्मण-कुल का मान्य महोदय मान-धनी ।
"विष्णुच्चित्तर" नाम पड़ा था इन का जो
भक्त बड़े थे पावन हरि का सेवक थे ।।४।।

नन्दन-वन में सुन्दर फूलें उपजा के
बन्दनवार औ वेणी बनाकर पुष्पों से ।
बन्धुर माला तुलसी-युत शुभ वन माला
मन्दिर जाकर नित्य चढ़ाकर रमते थे ।।५।।

मल्ली, यूथी, मन्दारकली मनो-रंजित
कह्लार, कदम्ब, कमल मनोहर, बकुल, मुकुल ।
नन्दया-वर्त, पुंनाग, मालती, बन्धूक और
कुन्द, मिहन्दी-कोरक, कोमल-कुसुम गुलाब ।।६।।

नीलोत्पल श्यामल मनमोहन, कल चम्पक,
बाला तामिल कोमल कलिका संपंगी ।
माला गूँफन लायक मंजुल पुष्प जपा
कोलाहल से गोपाल गले लसते थे ।।७।।

विष्णु-चित्त की पुष्प-वाटिका बहुरम्या
वैष्णव-जन का निष्कलङ्क मन की प्रतिमा ।

कृष्ण-भक्त की पुष्प सुरभि की कीर्त्ति-लता
स्वर्ग-पुरी पर निश्चल उड़ती जाती थी ॥८॥

× × ×

एक दिवस की बात घटी
जो कि जहान की देन हुई ।
रोज की भान्ति ब्राह्मण भी
खोज रहे थे कुसुम, कली ॥९॥

तुलसी वन के बीच खड़े
उलझ रहे थे नव-दल में ।
इतने में वे चौंक पड़े
रुदन ध्वुनी-सी सुन करके ॥१०॥

पीछे मुड़कर देखे तो
कुसुम भुला कर दौड़ पड़े ।
बीच बृन्दा के फूलों में
अतिशय - वल्ली दीख पड़ी ॥११॥

तुलसी - मरकत - छाया में
सरस कनक की नवल लता ।
करुणाकिसलय अरुण कली
उपजी हुलसी एक लली ॥१२॥

बच्चों को ले कर-युग में
"अच्छी दौलत आज मिली" ।

उत्साह - भरे उमंग - भरे
वत्सा देख वे फूल उठे ॥१३॥

"निस्सन्तान मुझे यह जो
सत्सन्तान मिली सहज ही।
निस्सन्देह यह माधव की
उत्तम - करुणा, भक्ति - फली" ॥१४॥

आमोद - भरे लौट पड़े
दामोदर का वर - सेवक।
कोमल - वल्ली बीच मिली
कारण नाम भई "लतिका" ॥१५॥

"पूँगोधा" जो "पुष्प का हार"
इंगित करती तमिल - भाषा।
मंगल - नाम पड़ा शिशुका
तुंग - शशि - कला सी कलिका ॥१६॥

शैशव

चन्द्रोदय - सी "पूँगोधा"
दिन - दिन बढ़ने लगी बाला।
अंग अंग छवि फूट पड़ा
शैशव माधुर्य छूट पड़ा ॥१॥

घुटरन चलने लगी गोधा
ठुमुक ठुमुक वर आंगन में।

अटपट बोली बोल उठी
सुनकर विप्र हुए मोदी ॥२॥

"अप्पा" कहकर हंस पड़ती
अटक अटक कर कुछ कहती ।
गुब्बारे से मुँह को फुला
शैशव - लीला दिखलाती ॥३॥

विष्णु - चित्त की प्रिय - बेटी
सब की लाड़ली लल्ली थी ।
पुष्प - दलों को सरसाती
खिलक खिलक कर हंस पड़ती ॥४॥

धूली - मण्डित - तनु - वल्ली
अलि कुल वेणी अति-चिकनी ।
अमल कमल सा आनन की
अतिशय शोभा दिखलाती ॥५॥

तात - करों को पकड़ पकड़
उठने लगती गिर जाती ।
गोद में खेलती मुस्काती
कुडमल - दान्तें दिखलाती ॥६॥

कंकन, किंकिनी चलने से
झन झन ध्वनि जो फैलाती ।
सुन सुन मुड़ती चारों ओर
ठन ठन बजता कल नूपुर ॥७॥

मनि - गन - भूषा - छाया को
रवि - किरणांकित देख लली।
कमल करों पर लेने को
लपक लपक मुड़ पड़ती थी ।।८।।

चन्द्र विनिन्दित - मुख - शोभा
मन्द - हास - मल्लिका - प्रभा।
चन्दन - मृदुल नवल तन की
मंजुल कान्ति अलौकिक थी ।।९।।

नव - चम्पक - मय मृदु नासा
लाल कपोल, ललाम ललाट।
चटुल नयन, श्यामल - कबरी
सबका मन हर लेते थे ।।१०।।

धीरे धीरे शिशु - गोधा,
पावों चलना सीख गई।
चारों ओर लगी चलने
चंचल हिरन - कुमारी सी ।।११।।

चरण कमल को उठा उठा
मणिमय कुंडल हिला हिला।
कुसुम - लता तन नचा नचा
चलन - मधुरिमा दिखा रही ।।१२।।

पुष्पित - वल्ली चलती हो
पुण्य - जाह्नवी बहती हो।

निर्मल लक्ष्मी फिरती हो
निरुपम ज्योति निकली हो ।।१३।।

मानसरोवर तड़ाग में
श्वेत मराली मोद भरी ।
सानन्द विहार करती हो
दामिनि भू पर उतरती हो ।।१४।।

वर ऋतु लक्ष्मी आयी हो
वरना सकल - कला - वाणी ।
बच्ची बनकर आयी हो
निश्चय करना मुश्किल था ।।१५।।

ठुमुक ठुमुक चलती गोधा
खिलक खिलक हंसती गाती ।
अटक अटक कुछ कह जाती
मचल मचल मन भाती थी ।।१६।।

चरण गुलाबी, तन गोरा,
नयन विशाला, और नीला ।
अधर छबीला, मुख भोला
अनुपम सुख - छबि थी बाला ।।१७।।

विष्णुचित्त - भुज छाया में
नित्य नवोदित चाँदनी - सी ।
बढ़ती बढ़ती बड़ी हुई
पाँच बरस को लाँघ गई ।।१८।।

किशोरावस्था

बढ़ गई अब बाल मनोरमा
सकल लोक ललाम-विलासिनी।
कनक - मंजु - किशोर - शरीरिणी
जनक - मानस-राज - मरालिनी ॥१॥

घर सुप्रांगन में जब खेलती
सखि-कुलावृत-कन्दुक बालिका।
अरुण-पद्म करों पर नाचता
जड़ भी गेन्द सचेतन दीखता ॥२॥

कर - विताडित कन्दुक नाचता
मधुर - कोमल - लोचन नाचते।
चतुर पाद-सरोज भी कूदते
कबरी भार कन्धों पर नाचता ॥३॥

अधर खोल यदा कुछ बोलती
अमल पुष्प-लड़ी सी बिखेरती।
मधुर - मंजुल-मंगल बाणी की
निधि ही फूट निरंकुश राजती ॥४॥

सखिन मध्य सरासर शोभती
नखत बीच कलाकर हो यथा।
मुख-विलोकन में सब भूलते।
तन तथा मन तात सदा ही थे ॥५॥

सकल तत्व विशारद-तात ने
अमल अक्षर-ज्ञान कुमारी को।
अति ही छुटपन में शुरू किया
वह भी जल्दी विचक्षण हो गई ।।६।।

गणित, गीत, कला अरु व्याकरण,
धरम शास्त्र तथा सब वेद-अंग।
तामिल-साहित्य-ज्ञान सिखा दिया
अमल भक्ति-पियूष पिला दिया ।।७।।

भजन, कीर्तन, चिन्तन, श्री-हरी
स्मरण, बन्दन, अर्चन सीख ली।
घर - गृहस्थी - संभालन पालन,
अतिथि-पूजन में निपुणा हुई ।।८।।

कुलक्रमागत गौरव, शील, मान
उसकी थे सब ये अपनी ही जान।
अलौकिकामर-अद्भुत-ज्ञान से
जगमगाने लगी वह वल्लरी ।।९।।

विनय-माधुर्य, सौम्य - सुशीलता
करुण - शीतलता, गम्भीरता।
अमर दिव्य-चरित्र विभावता
सकल सद्गुण-सायर थी 'लता' ।।१०।।

नगर की वह दिव्य विभूति थी
जनक की वह अनुपम देन थी।

सकल-सज्जन - नन्दिनी सुन्दरी।
बढ़कर हो गई यौवन शालिनी ॥११॥

तरुणी गोधा

गोधा बाला कुलमणि शीला
फूली वल्ली कुसुम विलासा।
जो भी देखें सुधि - बुधि खोते
श्री-देवी भी अचरज करती ॥१॥

काली काली भृकुटि बिलासे
डोली मद में यौवन-शोभा।
धीरे धीरे शैशव छूटा
नीरज नयननि में छवि फूटी ॥२॥

आगे पीछे अद्‌भुत ज्योती
फूट निकलती जहाँ वह रहती।
मेघाच्छादित विधु-मणि जैसे
कुंचित - केश - मुखाम्बुज दीखे ॥३॥

भोले भाले मुख-मण्डल में
नीले नीले नयन विराजे।
मानो मंजुल शीतल शशि में
नीलाम्बुज दो निकले फूले ॥४॥

कुन्द कली से कुड्मल दान्तें
सुन्दर दाड़िम-बीज लजाते

इन्दु-विनिन्दित बन्धुर मुख में
सिन्दुर शोणाधर छवि पाते ॥५॥

ललित - लवंग - लता - जित-ललना
लावण्यमयी, ललिता, नलिना,
विलसित लसती विद्या-वल्ली
चकित निरखते चंचल-मानव ॥६॥

मधुमयवाणी अलि कुल वेणी
चतुरविलासिनी सकल-कलाढ्या ।
मदन मान सब मर्दन करती
मोहन यौवन शालिनी निकली ॥७॥

बेटी तन में फूट निकलती
अनूठी अद्भुत छवि को निरखे ।
टूटी नींद पिता की फिक्र में
"वाटी-सम्भव वनिता किसकी" ? ॥८॥

"इस लतिका को किस को सौंपूं ?
कुसुम लता के लायक वर कौन"
इस चिन्ता में चिन्तित द्विज-वर
कुछ भी निश्चय कर न सके थे ॥९॥

"कोई धनवान कोई गुणवान
कोई सुन्दर कोई सज्जन ।
सब ही सद्गुण एक ही जगह में
विधि नहीं सरजा क्या करूँ अब मैं" ॥१०॥

मन में सोच कर मान धनी वे
दिन दिन डूबे चिन्ता नदी में।
अनुपम सुन्दरी अच्युत प्यारी
वन देवी सी राज रही थी ॥११॥

भक्तिमती गोधा

ऐसी दशा में बढ़ने लगी थी
श्री रूपिणी देव-कुमारी बाला।
श्री विल्लिपुत्तूर-स्थित विष्णु-जी को
नित ही चढ़ाती नव-पुष्प-माला ॥१॥

बेटी सबेरे सुम - वाटी जाती
मोटी कली, फूल चुन-चुन के लाती।
नैपुण्य से रम्य माला बनाती
वट-पत्र शायी को नित ही चढ़ाती ॥२॥

मन्दार सुन्दर, मधुरा जुही भी
सिन्धूर, बन्धूक, शिरिषा रसीली।
पुन्नाग - केसर, नव सूर्य-कान्ति,
पद्मावली, बाल-कदम्ब-कोरक ॥३॥

चम्पा, चमेली, जल-नील-कोमल-
अम्भोज-राजी, अरुणा जपा भी।
सम्फुल्ल कुरवक, मरुवक और मोती
श्री-पारिजात, पाटलि, मालती भी ॥४॥

कह्लार, गन्धाढ्य, केतक, तमाला .
मल्ली कली मंजुल माधवी-श्री।
फुल्लारविन्द पुष्पित पुण्डरीका
सब पुष्प से रोज माला पिरोती ।।५।।

कैवल्यदा कृष्ण - सुगन्ध - रम्या
शैवाल संकाश-दल नील-शोभा
श्रीरंग - वक्षोर्ध्व - शृङ्गार - भूषा
तुलसी नई पुष्प-ललाम-शीला ।।६।।

दिने दिने विष्णु - पुरी लला को
मनोज्ञ - माला महिला चढ़ाती।
अनेक बार आप भी मन्दिर जाती
मनोमयी भक्तिलता कुमारी ।।७।।

रंगेश को, रम्य रमेश जी को
शृङ्गार-सौन्दर्य-सौजन्य-भू को।
तुंगाभिरामाढ्य - दुग्धाब्धि - नागर
संग्राम धीर, श्यामल-श्यामजी को ।।८।।

माधव, मनोहर, मधु - कैटभारी,
केशव, किशोर, केशि-विनाश-केलि।
श्रीधर, महीधर, मुरली-मनोहर
श्रीरंग-शायी, जगन्नाथजी को ।।९।।

गोधा कुमारी ने प्रेमी बनाया
पादारविन्दों में जीवन चढ़ाया।

भू-भार हर्त्ता भुवनेश को वह
आधार श्रीदेव को अपना वर माना ॥१०॥

पुत्री हुई थी भुवनेश - प्यारी
चित्तार्पण करके चिन्ता मिटायी।
इतना न जाने थे इसके पिता जो
भक्ता बनी थी भगवान की प्यारी ॥११॥

मोहन लतिका

एक दिन पिता थे सरिता नहाने
तड़के गये थे मालादि धरके।
रोज का नियम था सो यह जारी रखा
"आज लौटने पर हहा क्या यह देखा" ॥१॥

गोधा ने सब कुछ चौपट किया था
श्रीनाथ-पूजा तिरस्कार किया था।
आइने के सामने वह थी खड़ी यों
श्री आई हो शेष-शयनाब्धि छोड़ी ॥२॥

रंगेश-पूजा को जो माल रक्खा
वह अंगांग में थी रमणी सजायी।
वनमाला गोधा के वक्षोज डोली
वेणी लसीकेश-कलाप के बीच ॥३॥

गुलाब गले लटका, कुरवक करों में
कुमारी दर्पण में निज शोभा देखती।

मुसक्यान से मुखमण्डल और भी खिला था
दिव्याभ से सब ही कमरा भरा था ।।४।।

गन्धाढ्य से सब दिक् भर उठा था
सौन्दर्य से सर्व जग ही भरा था ।
क्रोधान्ध हो कोमल-वालिका पर
चिल्ला उठे तात "छि छि छि, कुमारी ।।५।।

यह क्या किया ? देख, अपराध ऐसा
मुझको ले डूबी, अति मूर्ख कन्या ।
किसको बताऊँ ? अब कैसे मैं जीऊँ ?
सर्वस्व-नाश, हा," द्विज रो उठे थे ।।६।।

गोधा खड़ी थी हत-चित्त होकर
सीधे वह दौड़ी निज तात के पास ।
राधा की जैसी रमणी को देखे
भूसुर बरसाते थे कठोर वाग्बाण ।।७।।

"क्यों री गँवारी ? क्यों माला पहिरी ?"
"यों ही पिता, गलती मुआफी कर दो ।"
"ना, ना, न होगा, नरक ही मिलेगा,"
"क्यों देव की चीज़ तुमने बिगाड़ी ?"।।८।।

"राजेश के फूल रमणी बिगाड़ी,
नागारि-वाहन, नहीं मैं आज खाऊँ ।"
शोकान्ध हो विप्र मूर्च्छित हुए थे
मूकी बनी पुत्री भी रो रही थी ।।९।।

भूसुर न खाए, पूँगोधा रोई
दूसरे भी दिन वे दुःखान्ध ही थे ।
भू पर पड़ी थी पुष्पों की माला
भू पर पड़ी प्रेयसी रो रही थी ॥१०॥

गोधा बाला का शोक

स्वामी प्यारे, सकल जन की अन्तरात्मा अनादी,
लक्ष्मी-नायक, ललित-मुरली-शंख-चक्राब्ज-धारी ।
जो मैं तेरी प्रिय-रमणी हूँ तो मुझे ब्याह लो नाथ
ना तो मेरी मरण अब हो, मर मिटूँ, हे मुरारी ॥१॥

मैं तो तेरी बन ही चुकी हूँ मेरे तुम हो मुरारी
तेरी मेरी नहीं अब यहाँ एक ही एक हैं हम ।
पूरी कर दो प्रण नहीं, हरे तो मैं प्राण छोड़ दूँगी
आओ, ब्याहो, अमर मुझको, आ उबारो खरारी ॥२॥

देखी जब ही तब छवि-सुधा दे चुकी अपने को
क्यों फिर मुझसे विमुख रहते रंग-नाथ बोलो, बोलो ।
आओ, आओ अखिल जग के आर्ति-सन्ताप हर्त्ता
मेटो मेरे हृदय दुःख को दिव्य-दर्शन दिखा के ॥३॥

श्रीरंगनाथ की वाणी

भू पर लोटी पुण्यवती
यों करती थी विनती तब ।
आकर द्विजके सपने में
यों बोले थे यदु नायक ॥१॥

"भक्ति-मरणे, विष्णु-चित्त सुनो
पुत्री तेरी यह गोधा।
मित्र, हमारी महिषी है
व्यर्थ की चिन्ता छोड़, अरे! ॥२॥

उसके गले में पड़ी हुई
पुष्प की माला अति प्यारी।
दुःख मुझे है तुमने जो
उसको मना किया विप्र-मणे ॥३॥

भक्ति-लता की पहनी हुई
उत्तम - माला मुझे प्यारी।
चित्त - शुद्धि के सौगन्ध्य से
नित्य महकती वह माला ॥४॥

केश - विराजित केसर - दाम
वास - विलासित है मुझको।
श्वास - सुगन्धित - शुभ - माला
म्लान नहीं, पर प्राण मुझे ॥५॥

इष्ट, विशिष्ट है, हे द्विज - वर,
परमोत्कृष्ट - पुरस्कार है।
श्रेष्ठतमा गोधा - माला
प्रेष्ठ मुझे है सदा सुनो ॥६॥

गोधा कंठ विभूषण - हार
मोद बहुत मुझे देता है।

बाधा क्यों तुम देते हो
गोधा - पुष्प मुझे प्यारा ॥७॥

पहले माला वह पहने
पीछे मुझको वही चढ़े।
यह उपहार मुझे स्वीकार है
इसमें कौन - सा अपराध है ? ॥८॥

सुन लो विप्रवर, मम इच्छा,
पूर्ण करो मेरी इच्छा।
कल से उसकी माला लाओ"।
कह कर चल दिये कंज-सुनाभ ॥९॥

रंग - नाथ की सुन वाणी
अंग - अंग रोमांच उठे।
भंग हुई मूर्छा उनकी
मंगल - मूर्ति की लीला थी ॥१०॥

उस दिन से थी वह बाला
नित्य पहनती शुभ - माला।
इससे उसका नाम बड़ा
"पहन कर देनेवाली" पड़ा ॥११॥

रंग - नाथ से भक्ति किया
रंग नाथ से ब्याह किया।
रंगनाथ को माल दिया
रंग - धाम को पा ही लिया ॥१२॥

इस रमणी के नाम अनेक
अति विचित्र है एक से एक।
"कुसुम-लता, कोमल - बाला"
"गोधा, राधा - रमण - प्रिया" ॥१३॥

"पहन कर देने वाली लता"
"पालन शीला," "भक्ति - लता"।
"विल्लिप्पुत्तूर कनक - लता"
"आण्डाल" हो गई देव सुता ॥१४॥

"आण्डाल" "पालन - शीला" है
"गोधा" कोमल - पुष्प - लड़ी।
पूँगोधा है पुष्प - लता
तामिल देश में प्रख्याता ॥१५॥

मुकुन्द मनोहरी मूर्तिमती
मोहन लतिका मोहिनी सी।
जगज्जननी बनी जय लक्ष्मी
जग में आण्डाल कृष्ण-प्रिया ॥१६॥

कीर्ति

परेश को स्व-भक्ति से प्रमुग्ध कर खड़ा किया
सु-भक्ति-युक्त-गीत-गाकर भक्त-मन विभोर किया।
शुद्ध-ब्रह्म चारिणी हो नित्य-धाम भी पा लिया
उत्तमा सुतोत्तमा नरोत्तमा है बालिका ॥१॥

पुष्प-माल के सहारे पुण्य-पूरुष पा लिया
निष्कलंक भक्ति का तरंग माल बहा दिया।
अब भी इस के नाम से विराजता है तामिल-देश
पुष्प-धारिणी प्रिये प्रणाम बारम्बार लो ॥२॥

विष्णु-चित्त-पुत्री होकर विष्णु को ही पा लिया
लज्जित कर सभी कलाकार कान्त गीत गा दिया।
अद्वितीय अम्बिके आण्डाल नाम सुन्दरि
बुद्धि - सिद्धि - भक्ति दो प्रसिद्ध - भक्ति-पालिके ॥३॥

मीराँबाई और आण्डाल

पुण्यशीला मीराँ का नाम भारतीय जनसाधारण के घर-घर में प्रातः स्मरणीय है। वह भारत की आत्मा के साथ घुलमिल कर एक हो गई है। हिन्दू समाज इस महीयसी नारी की याद करके अपने को धन्य बनाता है। इस भक्तिमती रमणी की महिमा जितनी कही जाय, वह अल्प है। गिरिधर नागर के चरणों की दासी प्रेममयी मीराँ समस्त विश्व को अपना एक ही सन्देश दे रही है—

"अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपं,
भक्तिरेव गरीयसी, भक्तिरेव गरीयसी।"—
(नारद भक्तिसूत्र)

मीराँ की जीवनगाथा से सारा हिन्दूसमाज—आबाल वृद्धवनिता भलीभाँति परिचित है और उनकी पदावली तो जन-जन के कण्ठों से मुखरित हो रही है। पर इसी तरह की एक दूसरी महीयसी रमणी, भक्तिमती, कवयित्री, पंडिता, पुण्यशीला आण्डाल को—जिसने तामिल देश, तामिल भाषा, तामिल साहित्य और तामिल—भारती को अपनी वाणी से धन्य किया—जिसकी गणना महान् आल्वार

भक्तों में की जाती है—सारा भारत नहीं जानता। उनकी वाणी से इने-गिने भाषाभिलाषी और संत साहित्य के विद्वान् ही परिचित हैं। हमारा भारत अनादिकाल से ही ज्ञान और भक्ति, इन दो विशिष्ट मार्गों का दिग्दर्शक, आविष्कारक और अनन्य उपासक रहता आया है। ज्ञान मार्ग साधारण जनता के लिये कठिन और भक्ति मार्ग परम सुलभ बतलाया गया है। यह कल-कल कल्लोलिनी-भक्ति-गंगा भारत को सदा से ही आप्लावित करती आई है। वेद-काल से लेकर गान्धी-युग तक भक्ति-धारा अविरल गति से बहती आयी है। क्या दक्षिण, क्या उत्तर, क्या गुजरात, क्या महाराष्ट्र, क्या कर्णाटक क्या बंगाल, हिमालय की चोटी से, कन्याकुमारी तक, सभी इस भक्ति सुधा-धारा में आप्लावित और आनन्दित, और समुदित हो चुके हैं। द्राविड़ देश में तो भक्ति की स्रोतस्विनी ही बही है। श्रीमद्‌भागवत में कहा है कि,

"उत्पन्ना द्रविड़ें चाऽहं वृद्धिं कर्णाटके गता"।

अर्थात् भक्ति द्रविड़ देश में उत्पन्न हुई और वहाँ से कर्णाटक की ओर प्रवाहित होती हुई सारे देश को आप्लावित कर दिया।

अद्वैत-मत स्थापक श्री शंकराचार्य, जिनके जैसा ज्ञानी और भक्त इस दुनिया में ढूँढ़ निकालना कठिन है, विशिष्टाद्वैत मत-स्थापक श्रीरामानुजाचार्य जिन्होंने भक्ति को सर्व-सुलभ बना दिया, और द्वैत-वाद के प्रतिष्ठाता श्रीमद् मध्वाचार्य, जो आचार्य--शिरोमणि गिने जाते हैं, ये तीनों भक्तिभानु सुदूर दक्षिण में, द्राविड़ देश में ही उदित हुए। उन्होंने अपनी दिव्य-

ज्योति से समस्त विश्व को प्रकाशमान कर दिया। ये तीनों ही आचार्य-भास्कर पहुँचे हुए महात्मा, सन्त, ज्ञानी, प्रकांड पंडित अद्वितीय-भक्त और परम निर्मल सज्जन और पुरुषोत्तम थे। इनमें शंकराचार्य को जन्म देने का सौभाग्य केरल देश को, मध्वाचार्य को जन्म देने का श्रेय कर्णाटक को और रामानुजाचार्य को जन्म देने का सौभाग्य तामिल देश को प्राप्त हुआ। श्रीरामानुजाचार्य के हृदय मानसरोवर से भक्ति की गंगा धारा अजस्र प्रवाहित हुई। महात्मा श्रीपेरूंपुदूर नामक जगह में अवतरित हुए। गृहस्थाश्रम के बाद संन्यासाश्रम ग्रहण किया। ये भेद-भाव-रहित भक्ति मार्ग के पक्ष-पाती थे। ऊँच-नीच, जात-पाँत आदि ऊपरी बातों को नहीं मानते थे। जीव-मात्र को भक्ति का अधिकारी मानते थे। जिनको लोग चण्डाल, अछूत कहते थे उनको भी ये तारक-मन्त्र सुनाया करते थे। इन्हीं के सिद्धान्त आगे चलकर श्री रामानन्द-द्वारा भारत-व्यापी हो गये। रामानुज और रामानन्द में थोड़ा मत-भेद होते हुए भी दोनों अनेक बातों में अभिन्न थे। श्री रामानुजाचार्य प्राचीन काल के सच्चे सत्यार्थी, अहिंसावादी, प्रपत्ति-वाद-उपासक थे। वे सर्व-शास्त्र-वेत्ता, सकल-विद्या-निष्णात, और संस्कृत के बड़े विद्वान् थे। इनको तामिल वैष्णव भक्त बड़ी ही श्रद्धा के साथ "उडैयवर" यानी 'उद्धार-कर्ता कहते हैं।।" "श्री भाष्यकार" भी इनके प्रसिद्ध नामों में से एक है। वैष्णव-आचार्य भक्तों के पहले तामिल देश में जो वैष्णव भक्त शिरोमणि हुए हैं उनको मुख्यतया बारह भक्तों को "आलवार" अर्थात् "भक्ति और भगवत्-ध्यान में मग्न" कहते

हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं :—पोयगै आलवार, भूतत्तु आलवार, पेय् आलवार, तिरुमझिशै आलवार, पेरिय आलवार, आण्डाल़ या गोधा, तोण्डरडिप्पोडि आलवार, तिरुमंगै आलवार, नम्मालवार, मधुर कवि आलवार, कुल शेखर आलवार और तिरुप्पाण आलवार। इन सबमें बड़े नम्मालवार हैं। रामानुजाचार्य, नादमुनि रघुनाथाचार्य और मणवाल मा मुनि आलवन्दार और वेदान्त-देशिक आचार्य-भक्त कहलाते हैं। इनमें पहले स्मरणीय आलवार भक्त नम्मालवार हैं। नम्मालवार आदि गुरु माने जाते हैं। इनको कुरुगै पिरान्, शठकोप, वेद को तामिल बनाने वाला मारन् आदि आदि नामों से पुकारा जाता है। श्री रामानुज भी आलवार भक्तों में ही गिने जाते हैं। इन बारह आलवारों में एक थे परम पूजनीय (पेरिय-बड़े) आलवार, जिनका नाम विष्णुचित्त था। ये ब्राह्मणशिरोमणि और भक्त चूड़ामणि थे। रामनाथपुरम् जिले में श्रीविल्लिप्पुत्तूर नामक जगह में निवास करते थे। यहाँ के भगवान् श्री विष्णु "वट-पत्र-शायी" प्रसिद्ध हैं। विष्णु-चित्त विष्णु-भक्त थे। यह तो उनके नाम से ही ध्वनित हो रहा है। ये त्रिचिनापल्ली (त्रिशिरपुर) के पास में श्रीरंग नामक क्षेत्र में विराजमान योग-मुद्रा-निद्रित श्री कस्तूरी रंग से, जिनको श्री रंग-नाथ भी कहते हैं, बहुत ही प्रेम करते थे। शेष-शायी श्रीरंग-नाथ मानो इनके प्राण ही थे। इन विष्णु चित्त ने मधुरा के पालक, श्री बलदेव नामक पांड्य-महाराजा की भरी सभा में मत-सम्बन्धी वाद-विवाद में समस्त अन्य सिद्धान्तों को हराकर "विष्णु ही परम देवता परमेश्वर हैं'—वाले "वैष्णव-सिद्धान्त" को स्थापित

करके प्रथम पुरस्कार पाया था। इसलिये पांड्य-राज-सम्मानित इनको "भट्टर पिरान" भी कहते हैं। इनको बाग-बगीचे लगाने का शौक था। फूल, पत्ते आदि की माला बनाकर रोज भगवान को चढ़ा कर ही भोजन करते थे। इनका नन्द-वन बहुत विशाल और परम-प्रसिद्ध था।

एक दिन की बात है कि प्रातःकाल स्नानोपरान्त श्री विष्णुचित्त तुलसी चुन रहे थे। इतने में रोने की आवाज आई। आवाज सुनकर इन्होंने घूमकर देखा तो एक परम अद्भुत दृश्य देखा। चारों तरफ सुगन्धयुक्त वनमाला लहरा रही थी। दशों दिशाओं में हरियाली फैली थी। अरुणोदय हो रहा था। अर्थात्—हरी-भरी तुलसी के बीच एक करुणामयी नन्हीं सी, नवजात शिशु, बालिका को देखा। विष्णु-चित्त ने विस्मित होकर बालिका को उठाया और उसे घर लाकर बड़ी तत्परता से पालने लगे। उन्होंने सोचा जैसे जनक को सीताजी मिली वैसे ही मुझे यह मिली है। यह साक्षात् लक्ष्मी का अवतार है। उन्होंने उस लड़की का नाम "कोदै" (गोधा) "कोमल-लता-जैसी-सुन्दरी' रखा। जैसे-जैसे गोधा बढ़ने लगी वैसे-वैसे उसका अलौकिक सौन्दर्य और अनुपम सद्गुण निखरने लगे। देखने वाले आश्चर्य से दंग रह गये। इससे विवाह करने के लिए बड़े-बड़े घराने के युवक उत्सुक थे। पर इस कन्या का वर, अपने मन से वरण किया हुआ, दूसरा ही था।

यह दिव्य सुन्दरी "कोदै" अपने सर्वज्ञ पिता से सीख कर समस्त विद्या में पारंगत हो चुकी थी। कविता लिखने में तो

अपने पिता से भी आगे बढ़ गई। कृष्ण-लीला गाने में श्री विष्णुचित्त तामिल—साहित्य-जगत में उतने ही सिद्धहस्त और प्रसिद्ध हैं जितने हिन्दी में सूरदासजी और संस्कृत में श्री शुकदेवजी और जयदेवजी किन्तु, उनकी अनुपम कन्या आण्डाल तो अपनी कृष्ण-भक्ति-रस-मयी कविताओं से सारे तामिल देश को ही नहीं, अपने पिता को भी चकित कर रही थी। पिता सोच में पड़े हुए थे कि, इसके लिये वर मिलना कठिन है। शील गुण-वय-ज्ञान-रूप-संपन्ना सर्वाङ्ग-सुन्दरी इस इकलौती बेटी के लिए उपयुक्त वर मिलेगा भी कहाँ, उनको क्या मालूम था कि "कोदै" स्वयं श्रीरंगनाथ से ब्याह करने वाली थी और उनकी अनन्य प्रेमिका वन चुकी थी। प्रेमी रंग-नाथ सब कुछ जानते थे। पर चुप थे। "कोदै" का रंगनाथ-प्रेम दिनों दिन बढ़ता ही गया।

एक दिन की बात है कि, श्री वट-पत्र-शायी भगवान् रंगनाथ के लिये ताजे फूलों की बहुत बड़ी माला तैयार हो चुकी थी। मन्दिर ले जाकर चढ़ाना ही बाकी था। विष्णुचित्त किसी कार्यवश बाहर गये हुए थे। लौट कर जब आये तो उन्होंने एक ऐसा दृश्य देखा कि वे क्रोध से तिलमिला उठे। उन्होंने देखा कि, उनकी प्राण-प्रिया पुत्री भगवान् के लिये जो पुष्प-मालाएँ रखी हुई थीं उनको उठाकर अपनी बन्धी हुई कबरी, सुन्दर गले और हाथों में पहनकर, सज-धजकर शीशे के सामने खड़ी होकर अपना सौन्दर्य आप ही देखकर मुस्करा रही थी। अनर्थ ! सर्वनाश ! एक ओर तो कन्या की अनुपम सौन्दर्य ज्योति से मुग्ध, दूसरी ओर उसकी अक्षम्य ढिठाई से

क्रुद्ध पिता भाव-सिन्धु में एकदम डूब गये। पहले तो वे कुछ बोल ही न सके। आहट पाकर गोधा (कोदे) मुड़ी तो वे अपने पिता को क्रुद्ध देख लज्जित हो, आँखों में आँसू भरकर अवाक् खड़ी रह गई। विष्णुचित्त ने गरज कर पूछा, "गोधा, तुमने यह क्या किया" ? क्षुब्ध हिरण की तरह अपनी सुन्दर आँखों को नीची करती हुई, बरबस निकलते हुए आँसुओं को रोककर वह धीरे-धीरे बोल उठी कि, "पिताजी, मैं रोज ही तो इन मालाओं को पहिले पहनकर फिर उतार कर टोकरी में रख देती हूँ"। "यह क्या ?" विष्णुचित्त के सिर पर हज़ार वज्र टूट पड़ा"। "आज की ही नहीं, रोज की घटना है यह ? अरी पगली, तुमने कितना बड़ा अपराध किया है। भगवान् विष्णु का ऐसा अपमान ? पहनी हुई माला भगवान् को चढ़ाई जाय ?" असह्य-वेदनासे छटपटाकर विष्णुचित्त रो पड़े। उस दिन माला मन्दिर को न भेजी गई। पिता, पुत्री ने भोजन भी नहीं किया। भूखे संतप्त विष्णुचित्त सो गए। सोते-सोते वे अचानक उठ बैठे। क्या यह भी सम्भव है ? सच है ? स्वप्न में श्री वट-पत्र शायी आकर उनसे कहने लगे कि, 'भक्तराज, तुमने आज मुझे असीम दुःख दिया'। विष्णुचित्त ने घबराकर कहा, "मैंने प्रभु ?"

श्री भगवान् ने कहा—हाँ, तुमने ! मैं रोज ही 'कोदै' के निर्मल प्रेम और भक्ति से सुरभित उसके गले में पहले सुशोभित होकर उतरी हुई पुष्प-माला पहना करता था और उसे पहनकर अपूर्व आनन्द पाता था। आज तुमने मुझे उस भक्ति-माला पाने से वंचित कर दिया। न तो तुमने माला भेजी और

Funding: Tattva Heritage Foundation,Kolkata. Digitization: eGangotri.

न मुझे भोजन ही मिला। मेरे भक्त भूखे रहें तो मैं कैसे खाऊँ ? गोधा को आगे के लिये माला पहनने से भी मना कर दिया, ऐसा क्यों किया ? आपको क्या मालूम है कि, उस निर्मल वेणी और गले में लिपटी हुई माला ही मुझे अत्यन्त प्रिय है। कल से मुझे गोधा के गले में पहले पहनी हुई माला ही चाहिए। वही मैं स्वीकार करूँगा। मुझे तुम्हारी कोरी मालाएँ नहीं चाहिए"। इतना कहकर भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये। अब आँखें खुलीं विष्णुचित्त की। भगवान् भक्ति ही चाहता है, विडंबना नहीं। प्रेम ही चाहता है तर्क नहीं। "हम भक्तन के भक्त हमारे"।

फिर क्या था। गोधा को रोज सवेरे उठकर अलंकृत होना पड़ने लगा। उसका नाम भी "चूडिक्कोडुत्तचुडर्क्कोडि" अर्थात् अलंकार करके फिर उतार कर माला-अर्पण करने-वाली 'लता' नाम पड़ गया। "आण्डाल" "हमारी रक्षा और उद्धार करनेवाली" है यह विड़द सुप्रसिद्ध हो चला। हम तामिल भाषी इस भक्तिमणि को "आण्डाल" कहकर ही पुकारते हैं, "कोदै" नहीं,

आण्डाल की कविताएँ भगवद्भक्ति से ओत-प्रोत हैं। विष्णु-भक्ति की चरम-सीमा उनमें हमें मिलती है। सच्चा हृदय, निर्मल-प्रेम विशुद्ध-भक्ति-भावना, आत्म-समर्पण, उत्कृष्ट दिव्य-स्पष्ट वाणी, सरल-शैली, सुन्दर उपमाएँ आण्डाल की विशेषताएँ हैं। मीराँ की तरह आण्डाल भी विरह-कातरा होकर वृन्दावन जाने के लिए तड़पती है। इन्होंने अपना सपने में कृष्ण से ब्याह करना, कृष्ण और नीला (प्रसिद्ध तिरुप्पावै)

को नींद से जगाना आदि बड़ी सुन्दर रचनाएँ की हैं। ये भूमि देवी का अवतार मानी जाती हैं। आण्डाल ने आजीवन विवाह नहीं किया। वह किसी मानव से विवाह करना नहीं चाहती थी। वह सिर्फ सोलह साल तक ही इस दुनियाँ में रही। श्रीरंगम् जाकर श्री रंग-नाथ की प्रतिमा से वेदोक्त-विधि से विवाह कर लिया। विष्णुचित्त कन्यादान कर रहे थे। पिता को कन्यादान करना ही पड़ा और रंग-नाथ को भी पाणि-ग्रहण करना पड़ा। श्री विल्लिप्पुत्तूर से धूम-धाम से आकर श्रीरंगम् में शादी कर ली आण्डाल ने। मांगल्य-धारण के समय आण्डाल भगवान् में विलीन हो गई। अर्थात् विष्णु भगवान् में तल्लीन हो इस असार संसार से विदा हो गई। इसका विवरण विष्णुचित्त की एक कविता से भी मिलता है, अर्थात् "इकलौती बेटी का मैंने लक्ष्मी समझ कर पालन-पोषण किया था। विष्णु, कमलनयन उसे उठा ले गया। मेरा घर वैसे ही सूना पड़ा है जैसे कमल-विहीन सरोवर, मेरी बेटी मुझे कहीं नहीं मिलती"। एक सच्चे पिता के ही ये वाक्य हो सकते हैं।

मीराँ बाई ने अपने जीवन में अनेक कष्ट झेले। वैधव्य, राजसत्ता से आतंक, सामूहिक क्रूरता, असह्य दुःख मीराँ बाई ने पाये। 'विष का प्याला राणा ने भेजा पीवत मीराँ हाँसी' धन्य ! कैसा उदार और निर्भीक हृदय। कैसी गम्भीरता ! कैसी धीरता !

आण्डाल षोड़शी कन्या थीं। भाग्यवश इस तरह की दारुण वेदनाओं से मुक्त थीं। आण्डाल और मीराँ दोनों ही भग-

वान् आनन्दकंद कृष्ण की उपासिका, परम-सुशीला, कवयित्रियाँ, भगवान् में लीन और दुनिया से एकदम उदासीन, भारतीय विभूतियाँ थीं। दोनों महिला-कुल-मुकुट-मणियाँ थीं। हमारे भारत की सांस्कृतिक आत्मा दोनों की रचनाओं में जगमगा रही है। उत्तर और दक्षिण-भारत की ये दोनों रमणियाँ भक्ति-साहित्य और भारत के भक्त-जनों की आह्लाददायिनी शक्ति हैं। वैष्णवों के लिए तो ये जगज्जननी श्री देवी और भूदेवी ही हैं।

॥ भक्ति की जय हो ॥

भक्ति तरुवर में तीन फल

निगम कलपतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृत - द्रव - संयुतं ।
पिवत भागवतं रसमालयम्
मुहुरहो रसिकाः भुविभावुका ।।

वेद-रूपी कल्पतरु में जो फल हो, उससे पक्व होकर जो अपने आप गिरा हो, शुक-रूपी तोते के मुख से जो खाया, चखा गया हो, अमृत के समान जो मिष्ट और स्वादिष्ट हो, मधुरिमा के अखण्ड समुद्र जो हो, ऐसे परम-प्रकृष्ट भागवत नामक सुन्दर फल के रस को, हे दुनियाँ के भावुक, रसिक सहृदय गणो ! आप लोग निश्शंक होकर पीजिये, आस्वादन कीजिये ।

हमारा भारत एक बहुत पुराना देश है, अत्यन्त प्राचीन और विशाल है । भक्ति के लिए सुप्रसिद्ध देश है । मुक्ति-वीज स्वरूपी शुक्ति संपुट है, परम रमणीय, पवित्रतम, विद्या-लंकृत, विवेकसम्पन्न शुद्धि-मुक्ता-हार है । अद्वैत-ज्ञान-भण्डार है, कलाओं के कलयिता, वेदान्त के मुकुट-मणि, वेदों के सागर, वेदांगों के खान, सरस, सुन्दर, समर-धुरन्धर, सात्विक-भाव-रत, शान्ति-प्रिय, सर्वदा-विशिष्ट, श्याम की लीला-भूमि,

गांधी की कर्म भूमि, भगवती-भारती के नटन-मन्दिर, श्री देवी का कमल-मन्दिर, पार्वती का शृंगार-सदन, काली की रण-रंग-भूमि और समस्त ज्ञान-राशिका सर्वांग-सुन्दर, सर्वांग-परिपूर्ण जाज्वल्यमान खजाना है। भगवान की सान्निध्य भूमि है। मन्द मलयमारुत की गति में चन्दन की सुगन्ध जहाँ फैलती हो, चतुर्वेदों की सघन आवाज जहाँ हमेशा गूँजती हो; जहां एला-लवंग-लता परिमीलित, पान की ललित-लताओं से परिमलित, नारियल, आम्र, कदली, पनस, देव-दारु वृक्षों से सुशोभित शस्य-श्यामला कोमला धरणी-माता नवोढ़ा वधू की तरह पुलकित, उल्लसित और प्रफुल्लित राजती हो; टीक, क्रमुक, साल, ताल, तमाल, कदम्बों की सघन-छाया, सुन्दर स्वरूप, रम्य फूल-पत्ते, डंडे, वज्र और गन्ध सदा सदुपयोग में आते हों; तमाखू, रबड़, काफी, राई, धान, गेहूँ के खेत जहाँ लबालब लहलहा रहे हों; कमल, कुमुद, कुन्द, इन्दीवर, मल्लिका, मालती, माधवी, कह्लार, कुरवक, रजनी-गन्धा, गुलाब, जाती, केतकी, जपा और चम्पक पुष्पों के परिमल-सुगन्ध पराग जहाँ चारों ओर उड़ती रहती हो; कल-कल नादिनी गंगा, कल्लोल-गम्भीर हासिनी कावेरी, शुभ्र-स्मिता नर्मदा, गर्जन-गम्भीरा ब्रह्म-पुत्री, कमनीय-मराल-गति-मनोहरा कृष्णा, श्याम-मनोहारिणी श्यामल यमुना, नाद-विलासिनी गोदावरी, सुन्दर-मन्दहासा सरयू, मरकत-मणि-मय-जल-विलासिनी सुस्मित वती गोमती, ताण्डव-चतुरा गण्डकी, लास्य-परा कोसी, कर्णामृत-नादिनी पेण्णै, मणि-गण-भूषणा मणि-मुक्ता, सुवर्ण-शोभिता सुवर्ण-मुखी, वेगवती वेगवती, आम्रवनेश्वर-प्रिय

ताम्रवर्णी, तपस्विनी तप्ती, महानादा महानदी, ज्ञान-प्रकाश सोन, सरसवती सरस्वती, और आनन्द-विलास, अमर-प्रकाश नद-नदी जनक मानसरोवर तड़ाग जिस मंजुल-भूमि को सदा पवित्र करते रहते हों, जहाँ जहाँ देखो तहाँ मन्दिर, मसजिद, गिरजाघर, गुफा-मन्दिर, प्रस्तर-प्राचीर, अजेय-गोपुर, दुर्धर्ष दुर्ग; अजन्ता, नालन्दा, नागार्जुन कोण्डा, कोणार्क, खजा-रोहो, इलिफेण्टा, एलोरा, महाबलि-पुरम् (मामल्लपुर) और बृहदीश्वर मन्दिर आदि आदि प्रपंच-आश्चर्य-शिखर-मणि-युत प्रस्तर वास्तुकलाएँ, ताजमहल जैसे संगमरमर के रंगीन स्वप्न सारी दुनियाँ को अपनी ओर आकर्षित करते रहते हों ऐसे विशाल-तम, पुरातन-तम, प्रभावशाली पुण्य-पुंज महादेश है यह भारत ।

सप्त स्वरों की सुरीली तान, तीनों समुद्रों के मधुर-घोष, पक्षियों के कलरव, मृगराज के गरजन, व्याघ्रों की भीषण-भर्त्सना, वीरों की शस्त्र-ध्वनि, धीरों की धैर्य-शंख ध्वनि, बच्चों की तुतली वाणी, नारियों की वेणु-वीणा-शुक-पिक विनिन्दित मधुर कण्ठ-ध्वनि, कृष्ण की मुरली-ध्वनि और नटराज की ताण्डव-ध्वनि जहाँ सदा सर्वदा गूँजती रहती हों; और जो अगणित मत-मतान्तरों के रहते हुए भी एक प्राण हो; जो सत्य के नित्यत्व का प्रतीक हो; जो बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास की चरम पराकाष्ठा हो; ऋद्धि, सिद्धि, समृद्धि, प्रसिद्धि और आत्म-शुद्धि का जो नायक हो उस महान देश का नाम है भारत वर्ष, भरत-खण्ड ।

महोन्नत हिमाचल-मुकुटधारी, महनीय-कन्या-कुमारी-चरण-कमल-युत, विन्ध्य-पर्वत-मध्य-विलासित, आबू-अरावली,

प्रचण्ड-भुज-दण्ड शोभित, मलय-चन्दन-तिलक-रंजित, आसिया खण्ड की अमर ज्योति, आत्म-बल का सिर-मौर, कला-विद्या-शास्त्र, उद्योग धन्धा-कारीगरी-कृषि पशुपालन आदि का उच्च शिखर; इतना होने पर भी जो उद्दण्डता-रहित, उग्रता-रहित, अनुचित-गर्व रहित, लोभ-रहित, आतंक रहित, क्रूरता-रहित होकर अणु-भट्टी, जलवायु-विस्फोटक-भय आतंकित अखिल विश्व को अपनी प्रीति-छाया, प्रेम-रक्षा दिखाकर, शान्ति का पथ-प्रदर्शक होकर समाधान का पाठ पढ़ा रहा हो, ऐसी महिमा-शालिनी-भूमि, महनीय देश है हमारा भारत-वर्ष जिसको दुनियाँ हिन्द, इण्डिया, हिन्दुस्थान आदि आदि नामों से पुकारती है।

इस महान देश में कलाएँ भगवदंश मानी जाती हैं। कुल मिलाकर चौंसठ (६४) कलाएँ कहलाती हैं। किन्तु फिर भी कलाएँ अनगिनत हैं। इसका कोई अन्त, इति श्री नहीं होता है। इनमें बहुत ही मुख्य कलाएँ पाँच हैं जो ललित कलाएँ (Fine Arts) कहकर पुकारी जाती हैं। वे वास्तु कला, मूर्ति कला, चित्र-कला, संगीतकला और साहित्य-कला हैं। ये उत्तरोत्तर उन्नततर यानी क्रमशः पहली से दूसरी, दूसरी से तीसरी, श्रेष्ठतर कला बतलायी गयी है। इस दृष्टिकोण से देखने पर सबसे श्रेष्ठतम साहित्य-कला निकलती है। साहित्य को ही काव्य कहते हैं यद्यपि आजकल काव्य संकुचित अर्थ में व्यवहार में आता है।

साहित्य दो प्रकार का होता है। दृश्य और श्रव्य। दृश्य वह है जो देखा जाता हो, नाटक, नाटिका आजकल के चित्र पट भी। श्रव्य वह है जो सुना, सुनाया जाता हो। प्रबन्ध

महा-काव्य, खण्ड-काव्य, गीति-काव्य, नीति-काव्य आदि आदि। यह श्रव्य काव्य भी दो प्रकार का होता है :—एक वह है जो धारावाहिक रूप से ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं को लेकर प्रकृति, युद्ध आदि वर्णनों के साथ रचा जाकर एक बहुत ही वृहदाकार रूप धारण कर लेता है। दूसरा वह है जो किसी भी व्यक्ति, घटना, धारणा, भावना या चिन्तना को लेकर स्वच्छन्द लिखा जाता है। यह स्वतः पूर्ण होता है और अल्पाकार रूप धारण करता है। पहले को प्रबन्ध काव्य (Epic) दूसरे को मुक्तक काव्य (Lyric) कहते हैं। हर एक भाषा में, अगर वह भाषा साहित्य-समृद्ध हो तो, उसमें प्रबन्ध-मुक्तक ये दोनों प्रकार के काव्य होते हैं। इनमें भी कविता, वचन, चम्पू यानी पद्य-गद्य, गद्य-पद्य मिश्रित का तीन भेद होता है। इनमें प्रबन्ध-काव्य बड़ा ही महत्वपूर्ण होता है। यह कविता-रूपी रचना एक राष्ट्र का रिक्थ, पित्रार्जित सम्पत्ति होती है। यह न केवल कल्पना-वर्णन-मिश्रित, कवि-प्रतिभा जन्य, धारा-वाहिक ऐतिहासिक कथा ही होती है अपि तु यह वह बहुमूल्य वस्तु होती है जो किसी देश के राष्ट्र के महत्व, विकास, कला-चार, नागरिकता, भावना, धारणा, कला, शास्त्र, कारीगरी, राजरीक, और बौद्धिक, आर्थिक, सामाजिक, राज-नैतिक, आध्यात्मिक और आधि-भौतिक उन्नति—अवनति को स्पष्ट रूप से दिखाने वाला, स्वच्छ दर्पण, स्फटिक-मुकुर होता है। इसलिए इसकी इतनी महत्ता है। वैसे ही प्रबन्ध काव्य रचने-वाले लेखक, कलाकार, काव्यकार, कवि गणों की कीर्ति भी अधिक है। वाल्मीकि, व्यास, कम्बर, तुलसी, होमर, वर्जिल,

डांटे, मिलटन आदि लेखक-गण दुनियाँ के साहित्य-गगन में अक्षय नक्षत्र होकर क्यों जगमगा रहे हैं? इसका कारण उनकी काव्य कला है, उनके प्रबन्ध-काव्य हैं।

हमारे भारत में दो सुप्रसिद्ध प्रबन्ध-काव्य इतिहास के नाम से बहुत ही विख्यात हैं। ये हैं वाल्मीकि रामायण और व्यास-महाभारत। इतिहास माने किसी एक देश या राष्ट्र में घटित सुप्रसिद्ध, महत्वपूर्ण घटना और उससे सम्बन्धित अन्यान्य विषय। रामायण का विषय राम-रावण युद्ध और भारत का विषय महाभारत युद्ध यानी कौरव-पाण्डव युद्ध। ऐतिहासिक घटना मुख्य विषय, एवं पुरुषोत्तम राम, कृष्ण और पाण्डव मुख्य-पात्र हैं इसलिए ये दोनों काव्य इतिहास कहलाते हैं। ये हैं भी बहुत ही बृहदाकार काव्य। रामायण में चौबीस सहस्र श्लोक हैं तो महाभारत में शत-सहस्र श्लोक। जैसे नाम और यश वैसे ही इनके काव्य-कलेवर भी बहुत बड़े हैं। रामायण के रचयिता संस्कृत के आदि कवि वालमीकि मुनि और महाभारत के निर्माण-कर्त्ता, चारों वेदों का संपादन करने वाले, अष्टादश महापुराणों को रचनेवाले, वादरायण, कृष्ण-द्वैपायन वेद व्यास मुनि हैं। वाल्मीकि ने तो एक ही रचना की। व्यास ने अगणित रचनाएँ कीं।

भागवत-पुराण-भक्ति-मुक्तामणि

सभी पुराण और बृहत्काय महाभारत की रचना कर चुकने के बाद भी श्री वेद-व्यास को शान्ति न मिली। उनका हृदय विक्षुब्ध

था; मन अशान्त इसलिए, अपनी आत्म-शान्ति के लिए, स्वान्तः सुखाय, नारद मुनि के कथनानुसार, व्यास जी ने मरकत-मणि-कृष्ण श्याम के गुण-गान करने वाली भागवत-पुरान नामक भक्ति-मणि हारावली की रचना की। श्रीमद्-भागवत भक्ति-क्षीर-सागर-सुधा, भक्ति-चिन्तामणि, मुक्ति-रत्नाकर, भक्ति-कामधेनु, वैराग्य-वैकुन्ठ, और दर्शन-महासागर, ज्ञान-पयोनिधि-चन्द्रमा है। यह भारतीय भक्त-जन, कवि-गण, साहित्यकार, लेखक-गण, योगी, ज्ञानी, यती, सन्यासी-लोग, विज्ञ विचक्षण-विद्वद्गण, दर्शनकार, कलाकार, शास्त्रज्ञ, पंडित, धर्मोपदेशक, समाज-सेवक, काव्य-धुरन्धर और कवि-दिग्गज सबों का कंठहार बना हुआ है। शक्ति, भुक्ति या मुक्ति अथवा चित्त-शुद्धि चाहनेवाले, जिज्ञासु, आर्त, अर्थार्थी या ज्ञानोपासक भागवत को कभी न भूलते; कभी न छोड़ते हैं। वैष्णवों का तो यह अपने प्राण से भी प्यारा है; आत्मा से भी निकट है, हृदय से भी घनिष्ट है। रक्त-धमनियों से भी अनिवार्य है, तो इसकी दिव्य-महिमा को सामान्य नर क्या गायें।

ज्ञान-भक्ति-वैराग्य तीनों को एक ओर छोड़ दें तो भी भागवत में जो साहित्य-सौंदर्य, काव्य की कमनीयता, कविता की कोमलता, अलंकारों की सुकुमारता, छन्द की छटा, उक्ति की गाम्भीर्यता, शैली की विशिष्टता, वर्णन की पटुता, वाग्विलास की वैचित्रियता, व्यंगयोक्ति का चमत्कार, विषय की अलौकिकता, भावनाओं की मधुरिमा, कला-चातुरी की ललितता देखने को मिलती हैं वह सचमुच अद्भुत, अलौकिक, अद्वितीय, अचिन्त-नीय, आनन्दमय और आवाङ्मनस-गोचर है। 'गिरा अनयन,

नयनबिनु बाणी' 'नारद, सारद, श्रुतय-अशेषा' भी शिरःकम्प, करताडन करके जिसकी वाह वाही करते हों, साक्षात् वाचस्पति भी शाबाशी भरते हों, उस अमोघ अभूत-पूर्व काव्य के बारे में हम क्या कहें, क्या न कहें ? भागवत की उपमा भागवत ही है। "गगनं गगनाकारं सागरं सागरोपमं"।

क्या शैली, क्या भाषा, क्या भाव, क्या वाक् पटुता, क्या भणिति-भंगिमा, क्या रस-निष्पत्ति, क्या वर्णन-चातुरी, क्या प्रकृति-छटा, क्या सत्य-प्रतिपादन-सामर्थ्य इन सब में भागवत अपना सानी नहीं रखता। अहो, "मधुरं-मधुरं-मधुरं-मधुरं" इससे आगे हम कुछ नहीं कह सकते।

यह भागवत संस्कृत भाषा में रची गई है। इस महापुराण के दशम-स्कन्ध में कृष्ण की जो बाल लीलाएँ आती हैं वे रसिक जनों के मन, हृदय, आत्मा को एकदम लूटकर आनन्दामृत-वर्षा करती है। व्यासजी के पीछे आनेवाले कितने ही भक्त, कवि और भक्त-कवि गणों ने इन बाल लीलाओं पर मुग्ध हो कर, इन्हें अपनाकर, हृदयङ्गम कर के, अपनी-अपनी मातृ-भाषा में मौलिक रचनाएँ की हैं। अनुवाद, छायानुवाद किए हैं। मूल कथा मात्र लेकर गीति-काव्य, गीत, पदावलियाँ रची हैं। इस की कुछ गिनती ही नहीं।

संस्कृत भाषा में ही लीलाशुक के कृष्ण-कर्णामृत, जयदेव के गीत-गोविन्द, नारायण-भट्ट के नारायणीय, नारायण-तीर्थ स्वामी की कृष्ण-लीला तरंगिणी, सदाशिव-ब्रह्मेन्द्र की गीतियाँ सुप्रसिद्ध हैं। विष्णु मन्दिरों में आज भी पूजा, उत्सव के अवसर पर बड़ी तन्मयता से गाई जाती हैं। सुननेवाली

जनता को आनन्द विभोर कर देती है। मैथिली में विद्यापति की पदावलियाँ, चण्डीदास के गीत, नरसी मेहता के गीत, कृष्ण चैतन्य की कृतियाँ, तेलुगु में त्यागैया, कन्नड में पुरन्दर-दास के गीत, हिन्दी में सूर-दास के सूर-सागर आदि-आदि इस बात के अक्षुण्ण साक्षी हैं कि भागवत ने इन महानुभावों को आपाद चूड़ मुग्ध कर दिया था। और तो और, तुलसीदास जी ने कृष्ण की बाल लीला के अनुसार राम की बाल लीला गाई हैं। राम आदि चारों भाइयों को बाल लीला मूल रामायण में नहीं है। इस भारतीय-बाल लीला काव्य का पथ प्रदर्शन का, सर्वप्रथम आदर्श होने का श्रेय भागवत को ही प्राप्त है, यानी भागवतकार श्री व्यास जी को ही प्राप्त है। व्यास का एक महाभारत, एक भगवद्-गीता, एक हरिवंश, एक महापुराण, एक ही एकब्रह्मसूत्र ग्रन्थ ही (इन में से कोई भी एक) इनकी और भारत-राष्ट्रकी अचल, अटल, विमल कीर्ति को आचन्द्रार्क अक्षुण्ण रखने के लिए पर्याप्त है। इन में से कोई भी एक ग्रन्थ भारत के अक्षय ज्ञान-राशि को प्रकाशित करने के लिए, भारत की विभूति को, कीर्ति-कौमुदी को शाश्वत रखने के लिए काफी हैं। किन्तु फिर भी, ये सब कुछ लिख चुकने के बाद भी जो व्यक्ति भागवत जैसे परम-रमणीय, परमोत्कृष्ट, परममधुर ग्रन्थ की रचना कर सकता है उसके बारे में कहें क्या? उसकी मस्तिष्क की शक्ति की, बुद्धि की प्रखरता की, अदम्य लेखन-सामर्थ्य की, अक्षय, अजेय प्रतिभा की ओर जब हमारी दृष्टि जाती हैं तब हम केवल यही कह सकते हैं कि :—

"शंकर : शंकर : साक्षात् व्यासो नारायण:स्वयम्"।

व्यासजी की काव्य कला का दो-एक उदाहरण देखें :—

जब कृष्ण मुरली गान करता है तब गोपियाँ आपस में मिलकर गाती हैं :—

वामबाहुकृत वामकपोलो
वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।
कोमलाङ्गलिभिराश्रितमार्गम्
गोप्य ईरयति यत्र मुकन्द ।।

अर्थ

जब कृष्ण अपने बाएँ भुज में बाएँ कपोल को सटकाकर, सुन्दर भ्रुकुटी को नचाकर अधर मणि में मुरली को धर के, गानामृत की वर्षा करता हुआ वन मार्ग में आता है तब गोपियाँ अपनी अंगुली उठाकर उसी दिशा को दिखाती हुई एक टक देख रही हैं।

यह गोपिका-युगल-गीत नामक पैन्तीसवाँ अध्याय इतना सुन्दर है कि हरएक कवि ने इसे एकदम अपना लिया है।

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका :
त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ।।

जब कृष्ण गोपियों का गर्व हरण करने के लिए उनके बीच में से अन्तर्ध्यान हो गया तब उसे ढूंढते-ढूंढ़ते गोपियाँ विकल होकर गाती हैं :—

हे कृष्ण, जब से तुम्हारा जन्म ब्रज में हुआ तब से लक्ष्मी देवी यहाँ शाश्वत रूप से निवास कर रही है। अरे प्यारे,

देखो तो सही, अपने प्राण को तुझ ही पर अटकाई हुई हम गोपियाँ तेरे प्यारे आत्मजन तुम्हें ढूँढ़ रहे हैं।

न खलु गोपिका नन्दनो भवान्
अखिल देहिनां अन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥

"हे कृष्ण, आप गोपियों के परमानन्द देने वाले, सब जीव-राशियों के हृदयस्थित भावों को जाननेवाले, अन्तर्यामी नहीं हैं क्या? इस दुनियाँ की रक्षा के लिए ब्रह्माजी ने आप से प्रार्थना की थी। तब, हे दोस्त, आप सात्वतों के कुल में अवतीर्ण हुए हैं"।

"गोपिका नन्दन होकर दुख कैसे देते हो, अन्तर्यामी होकर हमारे प्रेम को कैसे न जानते हो, परममित्र होकर दुःख दूर करने क्यों नहीं दौड़कर आते हो, भगवान होकर भक्तों की उपेक्षा कैसे करते हो, रक्षक होकर अब भक्षक कैसे बन गए हो," इतने सभी मार्मिक भाव इस श्लोक के काकु प्रश्न द्वारा (न खलु गोपिकानन्दनो भवान्) फूट निकलते हैं। वाच्यार्थ से नहीं, व्यंग्यार्थ से इसका सौन्दर्य सौ गुणा निखर आया है। यह सारे-का-सारा एकतीसवाँ अध्याय [दशम-स्कन्ध] इतना सुन्दर है कि प्रायः हर एक भारतीय भाषा में गोपिका गीत रच गया।

रास-क्रीडा, नौका विहार, मक्खन चोरी, कालीय-दमन, अघ, बक, धेनुक, तृणावर्त, पूतना, शकट, केशी-मर्दन, यमलार्जुन भंजन, चीर-हरण, बाल-वत्स-हरण, मुरली-गान, दावानल-

भक्षण, गोवर्धन-धारण, गो-चारण सभी लीला व घटनाएँ इतनी सजीव हैं कि प्रायः हर एक साहित्य-समृद्ध भारतीय भाषा में हर एक भक्त कवि ने एक-एक लीला की बृहत्साहित्य ही रच डाला है। यह हुई आदि स्रोत भागवत की बात।

ये ही सब लीलाएँ और भावनाएँ भक्तमणि मीरा, आण्डाल और विष्णुचित्त की पदावलियों में भी हैं। किन्तु अपनी-अपनी रुचि के अनुसार विशेषता लिए हुए।

उपर्युक्त लीलाशुक, जयदेव, नारायण-भट्ट और नारायण-तीर्थ एकदम भागवत में डूब गये। विद्यापति भी वैसे ही डूबे होंगे क्योंकि वे संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित और कवि-भक्त थे। सूरदास ने तो जरूर औरों से, और सो भी, श्रीवल्लभाचार्य के श्रीमुख से, पढ़ते सुनकर आत्म-विभोर होकर उसको एकदम हृदयङ्गम कर लिया। ये सब-के-सब भागवत पर मुग्ध होने-वाले भक्त-शिखामणियाँ, कवि चूड़ामणियाँ ही हैं।

मीराँ के पदों में कृष्ण लीलाएँ आती हैं। किन्तु वे उनकी सहानुभूति-संभूत हैं। स्वयं प्रसूत हैं। कृष्ण की सभी लीलाओं में से मीराबाई को परम प्यारी लगनेवाली लीला गोवर्धन-धारण ही है। इसमें कृष्ण का दीन-रक्षण-भाव उनको मुग्ध कर दिया है। "गिरिधारी, गिरिधारी" कहकर ही, "दासी मीरा लाल गिरिधर" कहकर ही पुकार उठती है।

आण्डाल का प्राणाधार श्रीरंगनाथ यानी कस्तूरी रंग अथवा परिमल-रंग-पति हैं। विष्णुचित्त का इष्टदेव बाल-कृष्ण है। सूरदास का तो राधेश्याम है। यह पद हिन्दी साहित्य जगत में प्रसिद्ध है:—

मीरा के प्रभु गिरिधर नागर
जय तुलसी के सीताराम।
जय नरसी के साँवलिया जै
सूरदास के राधेश्याम॥

आण्डाल श्रीकृष्ण और उनकी प्यारी पटरानी नीलादेवी को सुवेरे जगाती है [तिरुप्पावै में], गौरीव्रत रखती है, कुमारियों के साथ यमुना जाती है, स्वप्न में कृष्ण से ब्याह करती है। सुप्रसिद्ध स्वप्न गान ["वारणं आयिरं" में] वृन्दावन जाने के लिए तड़पती है, मदन-देव को वह यह कहकर धमकाती है कि "अगर किसी मानव की मुझे दुल्हिन बनाओगे तो उसी क्षण मैं मर जाऊँगी"। पुष्पों को जो नीले-काले रंग हों जैसे नीलोत्पल, तमाल, कुमुद, इन्दीवर आदि, मेघमाला, सागर, बारिस, प्रफुल्लित बनराजी जो दूर से हरे-भरे दिखते हैं, पर्वत माला जो नीली दिखती हैं, आकाश जो नीला-ही-नीला है, देख-देखकर कृष्ण की याद कर विरह-वेदना में रोती है, "गोविन्दा-गोविन्दा" कहकर कराहती है; बकती है; ["विण् नील मेलाप्पू" में] कोकिल, मयूर, बक, शुक, आदियों को कृष्ण के पास दूत बनाकर भेजती है; शुभ्र शंखराज पाँच जन्य को पूछती है कि "कृष्ण के अधर कर्पूर जैसे, कमल जैसे सुगन्धपूर्ण है? क्या उसके लाल अधर बहुत ही मीठा है जो तू सदा उसे पान करता रहता है? बोलो शंखराज, कुवलयापीड गज के दन्त तोड़ने वाले कृष्ण के अधर की गन्ध और स्वाद कैसे होती है? बताओ मुझे"। ["करुप्पूरं नारूमो कमलप्पू नारूमो?" में]

आखिरकार आण्डाल अपने परम प्रिय रंगनाथ में समा जाती है। आण्डाल की कविता में एक स्वच्छ दिव्य, उच्च नारी का परमोज्ज्वल हृदय जगमगाता है। वह कृष्ण की प्रेमिका, भक्ता और मुक्तिदात्री शक्ति है।

व्यास, सूर और विष्णुचित्त

किन्तु आलवारमहाकवि विष्णुचित्त तो सूरदास की तरह कृष्ण पर वात्सल्य-वर्षा करते हैं। कृष्ण के जन्म-दिवस पर गोकुल में कोलाहल, कर्ण छेदन, अन्न-प्रासन, झूला या पालने में शिशु का सोना ["माणिक्कं कट्टि"] लोरीगान, बच्चे का माता यशोदा द्वारा बाल संवारा जाना, खाना खिलाना, अटपट गति से चलना सीखना, तुतली बोली बोल उठना, घुटुरन चलना, चान्द के लिये रोना, जरा बड़ा होने पर बछड़ों को चराना, खेलना-कूदना, खेल में गोप बालिकाओं की क्रीड़ा-सामग्री को लात मार कर गिराना, उनके बनाए हुए कृत्रिम गृह को (चित्र, रेत, मिट्टी आदि का) मिटा देना, चोटी पकड़कर खींचना, धूल झोंकना, दही मक्खन चोरी करके एक दूसरे के मुँह में लपटाना, माता से पकड़े जाने पर रोने का स्वांग रचना आदि आदि लीलाएँ विष्णुचित्त को परम प्रिय हैं। बार-बार इन्हें गाने पर भी वे बाज नहीं आते; तृप्त नहीं होते, विष्णुचित्त ने न तो भागवत् का अनुवाद किया न अनुसरण-रूपक छायानुवाद ही किया। इन्होंने मौलिक रूप से बाल-कृष्ण का लीला गान किया है। एकदम मौलिक किन्तु

फिर भी, इसमें भी वही भागवत हरि-कथा-रस-मधुरिमा टपक पड़ती है। कितनी ही जगहें ऐसी हैं जिन्हें पढ़ते ही हमें ऐसा ज्ञान होने लगता है कि, वेदव्यास ही विष्णुचित्त बनकर तामिल में कृष्ण-लीला गा रहे हैं। भावों की एकता, भक्ति की रसात्मिकता, वात्सल्य की कोमलता, दिव्यप्रेम की सुकुमारता, वर्णन की सुन्दर वांछनीयता, शैली का लालित्य, और मनोविज्ञान-तत्व की सूक्ष्मता इन सब बातों में व्यास और विष्णुचित्त एक ही दीख रहे हैं। एक ही हो गए हैं, नहीं-नहीं, मानों एक ही व्यक्ति तामिल और संस्कृत में कृष्ण लीला गाते हों! यह सामंजस्य बड़े ही अचम्भे में डाल देता है। जरूर व्यासजी को तामिल मालूम न थी। और काल-गणनासे भी वे विष्णुचित्त के बहुत पूर्ववर्ती थे, यह निर्विवाद सिद्ध है। विष्णुचित्त को संस्कृत मालूम थी या नहीं यह बात हमको पता नहीं। शायद जानते भी होंगे अथवा न भी जानते होंगे। किन्तु उनकी रचना भागवत् का अनुवाद नहीं है। वह सहानुभूति की ज्वाला से स्वयं भूत हृदयोद्गार है। भागवत् महापुराण है, प्रबन्ध काव्य है। विष्णुचित्त की मुक्तक-प्रबन्ध रचना है। भागवत विशाल काव्य है। विष्णुचित्त की रचना उसकी तुलना में अल्पकाय ही है। भागवत महाकाव्य, एवं विष्णुचित्त की रचना स्वतःपूर्ण पदावलियाँ हैं। किन्तु फिर भी दोनों सर्वदा अभिन्न दिख रहे हैं। शायद यही विचित्रमय साम्य महानुभावों के हृदय की महिमा है। तभी तो यह अंगरेजी कहावत कि Great minds think alike [उदात्त मन एक प्रकार से ही सोचते हैं] बिलकुल सही मालूम होती है।

इतना ही नहीं अब सूर और विष्णुचित्त दोनों में भी अतिशय साम्य दीख पड़ता है। दोनों वैष्णव-शिखामणि, दोनों भक्त-चूड़ामणि, दोनों कवि-रत्न तो हैं ही। किन्तु देश-काल-वर्तमान से दोनों एकदम बहुत दूर हैं। भावों भावनाओं, अभिव्यक्तियों, वर्णन शैली भंगियों, रस निरूपणों और भाव-मधुरिमाओं में जो साम्य सूर और विष्णुचित्त में देखने को मिलते हैं वह अत्यन्त अद्भुत, परम विस्मयकारी और अलौकिक हैं। सारी दुनियाँ जानती है कि सूर और विष्णुचित्त विभिन्न भाषा के ही, नहीं किन्तु भिन्न-भिन्न भाषाकुलों के [हिन्दी आर्य-कुल और तामिल द्राविड़ कुल] प्रतिनिधि कवि हैं। सूर उत्तर-भारतीय तो विष्णुचित्त दक्षिण-भारतीय। सूर शायद जन्मान्ध, विष्णुचित्त अच्छी आँखवाले। सूर सन्यासी, विष्णुचित्त गृहस्थ। सूर गोवर्धन गिरि-वासी, विष्णुचित्त श्रीविल्लिपुत्तूर वासी। दोनों भिन्न-भिन्न काल में उत्पन्न हुए थे। समसामयिक नहीं थे। हाँ, एक बात अवश्य थी, दोनों वीर-वैष्णव, दोनों ब्राह्मण थे। सूरसारस्वत ब्राह्मण, विष्णुचित्त चूलिय [सिरके बाल को आगे बान्धनेवाले ब्राह्मण थे]। साम्य की ये बातें कारण नहीं हैं। निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि सूर को तामिल और विष्णुचित्त को हिन्दी मालूम न था। सूर सुदूर दक्षिण को, विष्णुचित्त उत्तर को कभी न गए थे। गोवर्धन छोड़कर सूर, और श्रीरंगम् छोड़कर विष्णुचित्त, कभी बाहर जानेपर राजी हुए होंगे इसमें भी सन्देह है। क्योंकि वे दोनों अपने-अपने इष्ट-देव से अलग होकर क्षण-मात्र भी जीवित नहीं रह सकते थे। उनकी प्रकृति ही वैसी थी उनमें

ऐसी लगन थी, ऐसी धुन थी। लगभग ६६० ई० से ७७५ ई० तक विष्णुचित्त इस भूमि पर रहे। सूरदास तो इनके बहुत पीछे अवतरित हुए। तो इन दोनों में ऐसे आश्चर्यजनक साम्य कैसे और कहाँ से आया? देखिए उदाहरण—सूर :—"घुटुरन चलत रेनु तन मंडित"; विष्णुचित्त :—"विलयाडु, पुलुदियुँ, कोण्डु" अर्थात् धूल भरा हुआ। सूर :—"ज़सोदा हरि पालने सुलावे"; विष्णुचित्तः—"माणिक्कं कट्टि वयिरं इडै कट्टि आणिप्पोन्नाल चेय्द वण्णच्चिरु तोट्टिल", मानिक और हीरा से जड़ित सोने के पालने में सोओ, मत रोओ रे बेटा। कृष्ण-जन्म तो जैसे दोनों में एक साथ, एक ही काल में गाया गया हो, ऐसा मालूम पड़ता है। सूरदास कृष्ण-जन्म के अवसर पर नन्द के घर में होनेवाले कुतूहल का, नर-नारियों के शृंगार का, दूध, दही, घी, मक्खन, अक्षत, कुंकुम और गुलाल उछाल-उछाल कर आनन्द मनाने का जैसा सजीव वर्णन करते हैं वैसे ही, बिलकुल वैसे ही, विष्णुचित्त भी वर्णन करते हैं। इसे देखकर तो दंग रह जाना पड़ता है। हिन्दी, तामिल दोनों जाननेवाले सज्जन और सन्नारीगण इन दोनों की वाणियों की तुलना कर के देखें तो आश्चर्य-जलधि में डूबे बिना नहीं रह सकते।

केवल भाव ही नहीं, भाषा की भंगिमा भी, वर्णन-सामग्री भी एक-सी लगती है। हाँ, लीलाओं को चुनने में दोनों में फ़र्क है। सूरदास अपनी अनूठी मौलिकता जगह-जगह दिखाते हुए भी कथा-वस्तु और प्रबन्ध-गठन के लिये पूरी तौर से भागवत का ही अनुसरण करते हैं। विष्णुचित्त भागवत का

अनुसरण नहीं करते । शिशु-कृष्ण का मनोमुग्धकारी, भोला-भाला रूप ही उनको परम प्रिय है । इसी रूप को लेकर अपनी स्वानुभूति, कल्पना और गम्भीर भक्ति भावना की उड़ान में उड़ते हुए वे किस्म-किस्म की नूतन-बाल-लीला ढूँढ़-ढूँढ़ कर निकालते और उसका मधुर वर्णन कर दुनिया को चकित और परवश कर देते हैं जो, भागवत में भी नहीं मिलती । बच्चे का औन्धा पड़ना, ताली बजाना, किलकना, घुटरन चलना, बलराम का आगे दौड़ना और शिशु कृष्ण का उसकी देखा-देखी अपनी अटपटी चाल से गिरते-पड़ते उसका पीछा करना [रज़त-गिरि जैसे बलराम दौड़ता है, और उसके पीछे नीलगिरि जैसे शिशु-कृष्ण अटपटी चाल से चल रहा है] । यशोदा का कृष्ण को बाल सँवारने के लिये, पुष्प-गुच्छ वेणी में लगाने के लिये, दूध पिलाने के लिए, कान-छेद-बढ़ाने के लिये, तैल-स्नान करने के लिये बुलाना आदि ।

चान्द को कृष्ण के बुलाने पर न आने से धमकियाँ दिखाना [“तन्मुखत्तु च्चुट्टि”]; शिशु का पाँवों और हाथों पर खड़े होकर हिलना; तालियाँ बजाकर किलकना, ठुमुक-ठुमुक चलना और गिर पड़ना, देहली को न लाँघ सकने पर रोना, रोना शुरू कर मुँह विचकाना, यशोदा मैया के पीछे से गले लगकर चिपटकर हँसना, साड़ी का आँचल पकड़ कर मचल-मचल कर मक्खन माँगना, किसी कीड़े-मकोड़े को देखकर अपनी तुतली बोली में [“फूच्ची”] कीड़ा कहकर डर के मारे माँ के पीछे छिपना, यशोदा का बच्चे की रक्षा मना कर आरती उतारना और कृष्ण को देखकर वात्सल्य-भरे व्यंग्य से

"तू दुनिया को खाने वाला, मिट्टी खाकर मुँह से चतुर्दश ब्रह्माण्ड दिखाने वाला, पूतना की जान चूसने वाला, तुझे खाना खिलाने को मैं डरती हूँ ["अंजुवन् अभ्मं तरवे"] कहकर उलाहना देना आदि-आदि विष्णुचित्त के मस्तिष्क की नूतन उपज हैं। ऐसी लीलाएँ भागवत में वर्णित नहीं हैं, भागवत में तो शिशु और बाल-कृष्ण की कम, किन्तु किशोर, तरुण, युवक, माणवक, राजा और नेता कृष्ण की लीलाएँ बहुत अधिक वर्णित हैं। तरुण कृष्ण का वर्णन सूरदास करते हैं तो शिशु कृष्ण का विष्णुचित्त विशेष वर्णन करते हैं।

मुरली-गान, कालीय-दमन, दान-लीला, मान-लीला, गोपियों का उलाहना देना, कृष्ण की लोकोत्तर प्रेम-चेष्टाएँ आदि-आदि दोनों वर्णन करते हैं। इनमें साम्य भी है और भेद भी। सूर "राधा" को कृष्ण की बाल-सखी और अनन्य प्रेयसी बनाते हैं तो विष्णुचित्त "नप्पिन्नै" यानी नीला देवी को बनाते हैं। राधा या नीला दोनों ही भागवत में नहीं मिलतीं। हाँ, उनकी आठ पटरानियों में एक रानी "नाग्नजिती" अवश्य मिलती है जिसको पाने के लिए कृष्ण ने सात क्रूर सांडों को जीता।

यही "नाग्नजिती" शायद 'नप्पिन्नै' बन गई हो, कहा नहीं जा सकता। गोवर्धन धारण लीला सूर-चित्त दोनों को ही बहुत प्रिय है। इतना ही नहीं किन्तु विष्णुचित्त की विशेषता नीचे लिखी बातों में भी मिलती है।

कृष्ण और राम दोनों अवतारों की गुण गाथा को, दो सखियाँ आमने-सामने बैठकर, उलट-पुलट कर गाती हैं। एक

राम की और एक कृष्ण की प्रशंसा करती है। एक श्लोक राम पर है, दूसरा कृष्ण पर। यह बहुत प्रसिद्ध गीत है।

विष्णुचित्त आप हनुमान बनकर, अशोक-बन में सीता देवी को "तुम्हारी शरण जनक-सुता; तुम्हारी शरण में आया हूँ माता मैथिली" कहता हुआ राम का सन्देश सुनाते हैं। यह तामिल साहित्य में परम प्रसिद्ध पद्य है [नेरिन्द करुम् कुलल् मडवाय् निन् अडियेन् विण्णप्पम्] अर्थात् लंबे, काले, सघन बालों वाली, पुष्पित-माला-युक्त कबरी-वाली माँ सीते, मैं, तेरा दास हनुमान हूँ। माता, मेरी विनती सुनो"। यह हनुमान सन्देश आपाद चूड करुण रस से ओत-प्रोत है। पढ़नेवाले चाहे कितने ही धैर्यशाली क्यों न हो, रोये बिना नहीं रह सकते, इसमें सीता के प्रति राम का अलौकिक किन्तु गूढ़-प्रेम उमड़-उमड़ कर बहता है। परन्तु मर्यादा का उल्लंघन कभी नहीं करता। सीमा नहीं लाँघता। सागर जैसे अपने ही अन्दर उथल-पुथल मचाता है, किन्तु किनारे को पार नहीं करता। गाम्भीर्यता और मधुरिमा, प्रेम और मर्यादा, सचाई और शिष्टाचार, करुण और घन-व्यथा, दुःख और आनन्द साथ-साथ बड़े वेग से उमड़ते हुए सीता और राम दोनों की दयनीय दशाओं का, उनकी मर्म-वेदना को द्विगुणित कर डालते हैं। राम की मुद्रिका देखकर सीता की जो दशा होती है वह रामायण की याद दिलाती है।

करुण रस में तो यह पद्य [पाशुरम्] भवभूति से टक्कर लेता है। सीता-वन-वास से जो अदम्य करुण-रस उत्तर-रामचरित में फूट पड़ता है वह इस पद्य में अशोक-बन-वास

में फूट पड़ता है । इसलिये इस सन्देश की भक्तों की दुनिया में बड़ी महिमा है ।

उत्तर-भारत सूरदास के बारे में बहुत-कुछ जानता है । दक्षिण भी इनको खूब जानता है । "सूर सूर" ही है इसके आगे कुछ कहना व्यर्थ है । भागवत ही सूर-सागर है और सूर-सागर ही भागवत ऐसा कहना अत्युक्ति न होगी । किन्तु सूर स्वयं इसको पसन्द नहीं करेंगे । वे परमभागवतचूड़ा-मणि जो ठहरे । इस विशाल ग्रन्थ में महामना सूर का विशाल हृदय ही चमक रहा है । अगर हम संस्कृत न जानते तो सूर- सागर पढ़ कर ही कृष्ण को प्राप्त कर सकते हैं ।

इक्षु-क्षीर-गुडादीनां माधुर्यस्यान्तरं महत् ।
तथापि न तदाख्यातुं, सरस्वत्यापि शक्यते ।।

ईख, दूध, गुड तीनों मधुर हैं, मीठे हैं । किन्तु इन तीनों की मिठास में, मधुरिमा में फर्क भी है । उस फर्क का वर्णन करना सरस्वती देवी के लिए भी अवश्य असम्भव है । इसी प्रकार व्यास-भगवान्, सूरदास और विष्णुचित्त तीनों मधुर-सागर हैं । इन तीनों में बहुत एकता भी है अनेकता भी है । भेद भी है और अभेद भी ।

"तदेजत् तन्नैजत् तद्दूरे तद्वदन्ति के," भक्तों की महिमा का, भक्ति का, भक्तों का, भक्त हृदयों का ठीक-ठीक वर्गी-करण, सन्तुलन कौन कर सकता है, क्योंकि 'मुक्तिर्हि तत्किंकरी' मुक्ति भक्ति की दासी है, अनन्यसेविका है ।

तामिल-वैष्णव-भक्तों की कुछ कविताएँ

पेरियाल़्वार-पल्लाण्डु

कविता

पल्लाण्डु पल्लाण्डु पल्लायिरत्ताण्डु
पल कोटि नूरायिरम् ।
मल्लाण्ड तिण्डोल् मणिवण्णा
उन् शेवडि शेव्वि तिरुक्काप्पु ।।

अनुवाद

श्री हरि की विजय हो, श्री हरि, हे नील मणि-श्यामल, विजय हो, विजय हो, तुम्हारी सदा जय हो, बड़े ही पराक्रम-शाली तुम्हारी बलिष्ठ भुजाओं की सदा-सर्वदा विजय हो। शत-शत वर्ष, सहस्त्र-सहस्त्र वर्ष, कोटि-कोटि जुग, शत-लक्ष कोटि-कोटि जुग-जुगान्तर काल तुम्हारी विजय हो। तुम्हारे रत्नारे मृदुल पाद पंकज हमारी रक्षा करें।

सूचनाः—तामिल भाषा में ழz ha एक विशिष्ट अक्षर है। यह न तो ल, न ळ, न झ, न ழz ha की तरह उच्चरित होता है। यह तामिल और मलयालम में बहुत उपयोग में आता है। इसे देव नागरी या अंग्रेजी में भी ठीक-ठीक लिखना मुश्किल है। तामिलभाषी लोगों के मुँह से सुनने पर ही यह अक्षर कैसा उच्चरित होता है यह जाना जा सकता है। तामिल में ल भी और ळ भी है। इसको सूचित करने के लिए

कविता

अडियोमोड्डुम्   निन्नोड्डुम्,
            पिरिवु   इन्रि   आयिरं   पल्लाण्डु
वडिवाय्   निन्   वल   मार्विनिल्
            वालzकिन्र   मंगैयुं   पल्लाण्डु ।
वडिवार   जोति   वलन्तुरैयुं,
            चुडरु   आलिzयुम्,   पल्लाण्डु
पडै   पोर्   पुक्कु   मुझंzगुम्   अप्
            पांचजन्नियमुम्   पल्लाण्डे ।

अनुवाद

तुम्हारे साथ, और तुम्हारे परम-भक्त भागवतों के साथ हमारा सम्पर्क शत-शत युग तक बना रहे। कभी बिछोह न हो। बड़ी ही शोभा के साथ तुम्हारे दाहिने वक्षस्थल पर विराजमाना उस कमल वल्ली, उस ललना-मणि की जय हो, जय हो, शत-शत कोटि युग विजय हो।

सुन्दर कान्ति-युक्त, अतिशय-सौन्दर्य-युक्त तुम्हारे दाहिने हाथ पर सदा राजने वाले उस ज्योतिर्मय सुदर्शन चक्र की जय हो। जय हो। सदा विजय हो।

घमासान युद्ध में वैरियों के कान अपने विजय-नाद से

जहाँ-जहाँ यह अक्षर ழz ha आता है उसके नीचे अंग्रेजी z, z लिख-कर सूचित किया है।

जैसे :—लुं z, मार्गझि z आदि

जहाँ मृदु उच्चारण हो वहाँ ळz, जहाँ कठिन उच्चारण हो वहाँ झz ऐसी एक अपनी निजी प्रणाली से काम लिया है।

फाड़ने वाले उस पांचजन्य शंखराज की भी जय हो, जय हो। शत-कोटि युग विजय हो।

कविता

अण्डक्कुलत्तुक्कु अधिपतियागि
असुरर् इराक्कदरै
इण्डक्कुलत्तै एड्डुतुक्कलैन्द
इरुडीकेशन् तनक्कु।
त्तोण्डक्कुलतिल् उल्लीर वन्दु
अडि तोलुट्दु आयिरं नामं चोल्लि
प्पण्डैक्कुलत्तैत्तविर्न्दु
पल्लाण्डु पल्लायिरत्ताण्डु एन्मिने॥

अनुवाद

हे सच्चे भागवतो, भक्तो, आइये, आइये, मेरे साथ स्वर में स्वर मिला कर गाइये। सारे अमरों के अधिपति होकर जिसने असुर और राक्षसों के कुल की पूरी जड़ ही को काट डाला, उस हृषीकेश की, हरि की, अपनी सारी भव-जंजाल छोड़कर, जय-जयकार करो। जय बोलो, विजय बोलो। शत-शत-कोटि युग जय विजयी भव बोलो। बोलो हरि की जय।

* * *

मार्ग-शीर्ष यानी अगहन का महीना हम तामिल भाषा-भाषियों के लिए एक परम-पवित्र महीना है। इसी महीने में हरिनाम स्मरण, कीर्तन, भजन, मन्दिरों में उत्सव बड़ी धूम-धाम से चलते हैं। भगवान कृष्ण भी गीता में कहते हैं कि, 'मासानां मार्ग-शीर्षोऽहं'। इसी महीने में गोकुल-कुमारियों ने

कात्यायिनी व्रत रखा और साक्षात् कृष्ण को पति-रूप में पाया था। इससे भी इसकी महिमा बढ़ गयी है। श्री आण्डाल ने इसी बात को लेकर 'तिरुप्पावै' रची तो यह महीना 'तिरु-प्पावै' महीना से ही प्रसिद्ध हो गाया। भक्ति की महिमा अपरंपार है, अस्तु।

तामिल भाषा में 'तिरु' माने श्री, 'पावै' माने सुन्दर प्रतिमा यानी यहाँ गौरी की मूर्ति मतलब है। गौरी को ही कुमारियों ने पूजा था। और 'पावै' माने सुन्दर-विग्रह जैसी शोभावती रमणी भी इसका अर्थ है। यहाँ हर एक श्लोक के अन्त में 'एम्पावाय्' पद आता है। इसलिए इसका नाम 'तिरुप्पावै' पड़ गया। 'एमपावाय्' माने, हे मेरी सखी, मेरी सजनी, है। ऐसी ही और एक रचना सुप्रसिद्ध शिव-भक्त श्री माणिक्क-वाचक की है जिस का नाम 'तिरुवेंपावै' है। अर्थ वही है। खाली इसमें 'एम' 'हमारी' पद जोड़ा गया है। ये दोनों ही 'तिरुप्पावै' और 'तिरुएमपावै' मार्ग-शीर्ष महीने में भक्तों से पारायण किये जाते हैं। यहाँ हमें श्री आण्डाल की रचना 'तिरुप्पावै' का कुछ रस चखना है। सो देखें।

आण्डाल आप अपने को एक गोप-कुमारी मान लेती है। अपने शहर श्रीविल्लिप्पुत्तूर् को नन्द-गोकुल मान लेती है। सुबेरे उठकर सब को, न केवल अपनी सखी-सहेलियों, किन्तु साक्षात् श्री कृष्ण, उनकी पटरानी नप्पिन्नै सत्यानाम की, नग्नजित् राजा की पुत्री जो 'नाग्नजिती' कहलाती थीं और जिसके लिए कृष्ण ने सात लड़ैते सांडों को जीता था, इस को नीला देवी भी कहते हैं। श्री देवी, भू देवी, नीला देवी कहने

की प्रथा तामिल देश में है, को, बलराम को, नन्द को, और यशोदा को भी जगाती है। इसमें भक्ति-गंगा तो बहती ही है। साहित्य-सुषमा भी अनूठी, प्रकृति-छटा भी बहुत सुन्दर बन पड़ी है।

श्री आण्डाल तिरुप्पावै

कविता

मार्गझि$_z$न्तिङ्गल् मति निरैन्द नन्नालाल्
नीराडप्पोदुवीर् पोदुमिनो नेरिझै$_z$यीर
शीर् मलगुं आय्प्पाडि चेलवच्चिरुमीर्गाल्
कूर्वेल् कोडुन्दोझि$_z$लन् नन्दगोपन् कुमरन्
एर आर्न्द कण्णि यशोदै इळञ्चिङ्गम्
कार् मेनि च्चेङ्गण् कदिर् मदियं पोल् मुखन्तान्
नारायणने नमक्के परै तरुवान्
पारोर् पुगल$_z$प्पडिन्दु एलोर् एम्पावाय् ॥

अनुवाद

हे मेरी सखियो, उठो, जागो, अब सवेरा हो गया। यह मार्ग-शीर्ष का महीना है। चन्द्र की धवल चान्दनी से धवलित शुभ्र महीना है। चलो, हम सब नदी में नहाने चलें। हे गोकुल की लाड़ली कुमारियो, जागो! देखो। जिसके हाथ में नोकदार शक्ति है, जो शक्ति से कठोर काम करता है (यानी युद्ध करता है) जो नन्द बाबा का लाड़ला पुत्र है, जो दीर्घलोचनी यशोदा माता के सिंहशावक हैं, जिस का शरीर नील-मेघ-श्यामल है, जिसका मुख पूर्ण-चन्द्र के समान है, जिसकी

आँखें विकसित नवल कमल पुष्पों के समान है वही नारायण हम लोगों को दर्शन देगा, फरियाद सुनेगा, कष्टों को दूर करेगा । उठो, हम स्नान करें । दुनिया में यश कमावें, उठो, जागो मेरी सजनी ।

कविता

वैयत्तु वाल₂वीर्गाल् नामुन् नं पावैक्कु च्
चेय्यु किरिचैगल् केलीरो पार्क्कडलुल्
पैयत्तुयिन्र परमन् अडि पाडि
नेय् उण्णोम् पाल् उण्णोम् नाट्काले नीराडि ।
मैयिट्टु एझु₂दोम् मलरिट्टु नाम् मुडियोम्
शेययादन शेय्यों तीक्कुरलै चेन्रोदोम्
ऐयमुम् पिच्चैयु आन्दनैयु कै काट्टि
उय्युमारु एण्णि उहन्देलोर एमपावाय् ।।

अनुवाद

हे दुनिया में रहने वाले मानवो । हम अपनी गौरी का ब्रत कैसे रखेंगे । सो सुनिये । जो दुग्ध-सागर में मंजुल निद्रा में मग्न है उसका नाम लेकर गुणगान करेंगी । उसके पाद-पद्मों की महिमा गायेंगी । न हम घी खायेंगी, न दूध पियेंगी, न आँखों में अंजन लगायँगी, न केशों में पुष्प-माला धारण करेंगी । जो शास्त्रों में बर्जित कुकर्म हैं सो कदापि न करेंगी । किसी की निन्दा, चुगली न करेंगी । यथाशक्ति अन्न-दान करेंगी, दीनों-दुखियों को खिलायँगी, पिलायँगी । ऐसे ही अपने

उद्धार के मार्ग पर सहर्ष चलेंगी हाँ, मेरी सजनी ! जाग उठो ।

कविता

अम्बर मे तण्णीरे शोरे अरं चेय्युम्
एम्पेरुमान् नन्द गोपाला एभुन्दिराय्
कोम्पनार्कुं एल्लां कोभुन्दे कुलविलक्के
एम्पेरूमाट्टि यशोदाय् अरिवुराय्
अम्बरं ऊडरुत्तु, ओंगि उलगलन्द
अुम्बर् कोमाने उरंगादु, एझुन्दिराय्
चेम्पोर् कझलडि च्चेल्वा बल-देवा
उम्बियुम्, नीयुम्, उरंगेल् ओर एमपावाय् ॥

अनुवाद

सबको कपड़ा, खाना, पानी प्रचुर मात्रा में दान करने वाले नन्द गोपाला, उठिये, उठिये । रमणियों के तिलक, जाज्वल्यमान कान्ति-लते, कुल की दीपिके, हमारी मैया, यशोदा राणी जागिये, जागिये । आकाश (अंबर) को अपने पाद से फाड़ कर दुनिया को नापने वाले पुरुषोत्तम, देवाधिदेव, कृष्ण, मत सोओ, उठो रक्त-पाद-पदम्-वाले, लाडले बलराम उठो, जागो । तुम और तुम्हारे छोटे भाई दोनों को अब सोना नहीं चाहिए । जागो ।

कविता

अन्रु इव्वुलगं अलन्दाय् अडि पोट्रि
शेन्रु अंगु तेन्निलंगै शेट्राय् तिरल पोट्रि

पोन्र च्चकटं उदैत्ताय् पुगल्ɀ पोट्रि
कन्रु कुणिला एरिन्दाय् कभ्ɀल् पोट्रि ।
कुन्रु कुडैया एडुत्ताय् गुणं पोट्रि
वेन्रु पगै केडुक्कुम् निन् कैयिल् वेल् पोट्रि
एन्रु एन्रु उन् सेवगमे एत्तिप्परै कोलवान्
इन्रु यां वन्दों इरंगु एलोर एम पावाय् ।

अनुवाद

हे कृष्ण, उस जमाने में तुमने इस दुनिया को नापा था। उन पाद कमलों को नमस्कार। लंका में जाकर विजय डंका बजाया। उस दिव्य पराक्रम को नमस्कार। शकटासुर को एक लात से यमपुर भेज दिया। उस यश को नमस्कार। धेनुकासुर कों डंडे की तरह घुमाकर ताड़-वृक्ष पर फेंक मारा। तुम्हारे वीर चरणों को नमस्कार। जीत-जीतकर वैर को मिटाने वाली तुम्हारे हाथ की शक्ति आयुध को नमस्कार! नमस्कार! ऐसा कहकर, तुम्हारे वीर-धीर पराक्रम प्रतापों का गुणगान करते हुए विरुदावली गाते हुए हम सब आयी हैं तुम्हारे द्वार पर। उठो, जागो। हमारे ऊपर रहम दिखाओ कृपा करो, कृष्ण।

* * *

तोण्डार अडि प्पोडि आलवार भक्तांघ्रिरेणु 'तिरुमालै'[1] अर्थात् सुन्दर माला

कविता

पच्चै मा मलै पोल् मेनी
पवल वाय् कमलच्चेङ्गण्
अच्चुता अमरर् एरे
आयर् तम् कोलुन्दे एन्नुम् ।
इच्चुवै तविर यान् पोय्
इन्दिर लोकं आलुम्
अच्चुवै पेरिनुम् वेण्डेन्
अरंग मा नगर् उलाने ।।

अनुवाद

हे श्रीरंगपुर विहारी । सुनो रंगनाथ, मरकत-मणि पर्वत की तरह शरीर—कान्तिवाले, विद्रुम-फल की तरह अधर वाले, कमल पुष्प की तरह लोचन वाले, अच्युत, अमरों के नाथ, गोपालों के कुल-पल्लव, ऐसे-ऐसे नामों को ले-लेकर पुकारने में जो मधुर-रुचि का आस्वादन होता है उसे छोड़कर अगर मुझे महेन्द्र की पदवी और अमरपुर का सिंहासन मिले तो भी नहीं चाहिए, नहीं चाहिए ।

---

१. ये त्रिचिरापल्ली के पास कावेरी नदी के किनारे श्रीरंगं क्षेत्र में स्थित श्रीरंगनाथ को सम्बोन्धन करके लिखे गये हैं ।

कविता

वण्डिनं मुरलुम् शोलै मयिलिनं आलुम् शोलै
कोण्डल् मीदणवुम् शोलै कुयिलिनं कूवुम् शोलै ।
अण्डर कोन अमरुम् शोलै अणि तिरुवरंगं एन्ना
मिण्डर पायन्दु उण्णुम् चोर्रै विलक्कि
नाय्क्कु इडुमिनीरे ।

अनुवाद

भ्रमरावलियों के झंकार से गुञ्जित सुन्दर पुष्प-वाटिका, मत्त-मयूरों के नृत्य और शब्द से मण्डित पुष्प-वाटिका, नीले काले बादलों से मंडरायित पुष्प-वाटिका, कोकिल ध्वनि-मुखरित कोमल पुष्प-वाटिका, देव-नायक श्री रंग-नाथ विचरने वाली सुन्दर श्री रंग की पुष्प-वाटिका, ऐसे कहकर जो मानव गद्गद न हो उठता हो, ऐसा कभी न कहता हो, उस पामर को खाना मत दीजिए। उस भोजन को उठाकर कुत्ते को खिला दीजिए।

भाव

श्री रंगनाथ का नाम न लेने वाले मनुष्य से कुत्ता ही श्रेष्ठ है।

कुल शेखर आलवार

तिरुप्पति में जन्म पाने की उत्कट अभिलाषा

कविता

ऊन् एरु शेलवत्तु उडर पिरवि यान् वेण्डेन्
आन् एरु एभ्z वेन्रान् अडिमैत्तिरम् अल्लाल् ।

कून् एरु शंखं इड़त्तान् तन् वेंकटत्तुक्
कोन् एरि वाझु$_z$म् कुरूगापिरप्पेने ।

अनुवाद

इस मायामयी दुनियाँ में धन दौलत् के बीच जन्म लेना मैं नहीं चाहता । मैं चाहता हूँ उसकी गुलामी करना जिसने सात लडैते साँडों को जीता था । धवल शंख राज को जिसने अपने बाएँ हाथ में धारण कर रखा है उस वेंकटाचलपति के पहाड़ में "कोन् एरि" नामक झील में बगुला बनकर जन्म लेना मुझे बहुत पसन्द है ।

कविता

आनाद शेलवत्तु अरन्बयरगल् तरचूझ$_z$
बानालुम् शेल्वमुम् मण्णरशुम् यान् वेण्डेन् ।
तेनार् पूंशोलै तिरुवेंकट चुनैयिल्
मीनाय् पिरक्कुम् विधियुडैयेन् आवेने ।।

अनुवाद

अनगिनत वैभवों के बीच धनवती, रूपवती युवतियों के बीच रहकर समस्त भोगों को भुगत सकने वाली महेन्द्र की पदवी और इस भूमि की सर्वभौम-आधिपत्य भी मुझे नहीं चाहिये । मैं चाहता हूँ तिरुप्पति पर्वत के मधुर-पुष्प कानन से आवृत निर्झर में मछली होकर जन्म लेना ।

कविता

पिन्निठ्ठ शडैयानुम् बिरमनुम् इन्दिरनुम्
तुन्निट्ठु पुगलरिय वैकुन्द नील् वाशल्

मिन् वठ्ठच्चुडराझि$_z$ वेंकटक्कोन् तान् उमिझ$_z$म्
पोन् वठ्ठिल् पिडित्तु उडने पुगप्पेरुवेन् आवेने ।।

अनुवाद

वह महेश्वर भी जिसकी जटाएँ चमक रही हैं और वह ब्रह्माजी, इन्द्र और दूसरे बड़े-बड़े देवता गण भी जिस वैकुण्ठ-धाम के लम्बे चौड़े महान फाटक के भीतर घुस भी न सक रहे हों वहाँ मैं चाहता हूँ चमकते हुए चक्र को हाथ में धारण करनेवाले भगवान् के पीकदान को, उस कनकोज्ज्वल पीकदान को, हाथ में पकड़ता हुआ मैं उस वैकुण्ठ के भीतर घुस जाऊँ ।

कविता

ओण्पवल वेलै उलवु तण् पार्कडलुल्
कण् तुयिलुम् मायोन् कझ$_z$ल् इणैगल् काण्पदरकुप्
पण् पगरुम् वण्डिनंगल् पण् पाडुम् वेंकडत्तु
चण्पगमाय् निरकुम् तिरु वुडैयेन आवेने ।

अनुवाद

दीप्त प्रवाल-मंजरी-मंडित क्षीरसागर में सोने वाले महाविष्णु के पादारविन्दों को देखने के लिए भ्रमरावलियों के रीङ्कारों से गुंजित तिरुप्पति पर्वत में मैं चम्पा तरु होकर जन्म लूँगा ।

कविता

कंप-मद-आनैं कझु$_z$न्तगत्तिन् मेल् इरुन्दु
इन्पमरुम् शेलवंमुम् इव्वरशुम् यान् वेण्डेन्

एम्पेरुमान् ईशन् एभ्क़्zल वेंकट मलै मेल्
तम्पगमाय् निरकुम् तवं उडैयेन् आवेने ॥

अनुवाद

मद-मत्त हाथी के सुसज्जित पीठ पर बैठकर राजा वन-कर ठाठ वाट से राज्य करना मैं नहीं चाहता हूँ। मेरे जनक, परम पिता भगवान विष्णु के वेंकटाचल में खम्भा होकर खड़ा रहना बहुत ही पसन्द करता हूँ।

कविता

वानालुम् मा मति पोल् वेण् कुडैक्कीभ्क़्z मन्नवरतम्
कोना कि वीठ्रू इरुन्दु कोण्डाडुम् शेलवरियेन्।
तेनार् पूँजोलै तिरुवेंकट मलै मेल्
कानाराय् प्पायुम् करुत्तुडैयेन् आवेने ॥

अनुवाद

धवल-शुभ्र चन्द्रमा की तरह राजने वाले राज-छत्र की छाया में बैठकर राज्य करना मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं है। मधुच्युत मनोहारी तिरूवेंकट पर्वत में मैं वन-नदी बनकर प्रवा-हित होना चाहता हूँ।

कविता

शेडियाय वल् विनैगल् तीर्कुम् तिरुमाले
नेडियाने वेंकटवा निन् कोयिलिन् वाशल्
अडियारुम् वानवरुम् अरंबैयरुम् किडन्दियंगुम्
पडियाय् किडन्दु उन् पवल वाय् काण्पेने ॥

अनुवाद

भव-रोग को दूर करनेवाले हरि, हे मदन सुन्दर महाविष्णो, सुनो-सुनो। मैं तुम्हारे मन्दिर में भक्त लोग, सन्त महात्मा लोग, देव लोग और अप्सरा लोगों के पाद धूल धारण करनेवाली सीढ़ी बनकर पैदा होना चाहता हूँ। वैसे ही बड़ों की पाद धूलि लेता हुआ पड़े ही पड़े तुम्हारे प्रवाल-शोणाधर को देखूँगा। यही मेरी कामना है। यही मेरी प्रार्थना है। यही मेरी अभिलाषा है। यही मेरी चाह है। पूरी करो पुरुषोत्तम।

आ रे मुरारे

सुन्दर मुरलीधर, धरणी-धर,
मन्दर - धर पीताम्बर-धर ।
इन्दु वदन-धर, नन्दक कर-धर,
नन्दकुंवर, नरहरि, मुरहर ॥१॥

वनमाला-धर, वनिता मनहर,
करुणालयवर, कमला उर धर ।
कंकण वर धर, किंकिणी मणिधर
मंगल गिरि-धर, हरिमणि वपु धर॥२॥

करुणा सागर, घन कच सुन्दर,
अरुणांबुज-पद, नयनांबुजधर ।
कनकांबर-धर, कनक चक्र-धर,
सुन रे सुन सुख-सागर, नागर ॥३॥

कौस्तुभ-धर, घन-श्यामल तनु धर,
गुंजाधर, वर पिंछा शिर धर ।
अधर सुधा-धर अमृत-कला-धर,
सदय हृदय-धर, सार्व-भौम-वर ॥४॥

यमुना-प्रिय, वर यमलार्जुनन्नुत,
बल-भद्रानुज, फणि-पति-नर्तन ।

नम नारायण, भक्त-परायण,
यादव-नन्दन, यति-मन-चन्दन ॥५॥

मधु-वन-विहरण, मणि-गण भूषण,
मधु-मृदु-भाषण, मुनिजन-पोषण ।
मथुरा नायक, मुरली गायक,
अव आ वृन्दा-वन-मन-नन्दन ॥६॥

वैकुण्ठाधिप, वल्लवी-वल्लभ,
वल्ली-जनक हे वासव-पूजित ।
जलजानाथ, सनाथ, सनातन,
वसुधानाथ, जनार्दन, जग-धर ॥७॥

सुन, सुन सुन्दर शौर्य-धुरन्धर,
वन-वन जावत क्यों मनमोहन ?
मम मन मधुवन बस महिमामय,
मम जीवन मुरली बजाओ प्रभु ॥८॥

पीताम्बर-धारी,मुनि-जन मानस-हारी,
वेदान्त-विहारी,गुरु नादान्त विचारी ।
करुणा-रस-धारी अब प्रगटो गिरि-धारी,
चतुरानन-नारी-स्तुत, जलदाभ-मुरारी॥९॥

नवनीरदवपु-धारण-मन-मोहन प्यारे,
अब पन्नग शय्या तज प्रकट होकर आरे
गरुड़ासन, भुजगासन तज रे तज शौरे,
किरिपा करि कमलानन तुरन्त ही प्रभु आ रे॥१०॥

तुमको नहीं करुणा यदि जलदाभ मुरारे,
मुझको गति अब को पति कह रे कंसारे ?
कुमुदायित अधरामृत-मुरली-रव-धारी ।
तुम आकर पीड़ा हर पीताम्वर-धारी ।।११।।

कमला, वर वसुधा, सत्यभामा, रमा-रमण,
हम पीड़ित होते प्रभु तुम से पति जीते ?
यह ना हरि उचित अब तुम प्रकट होकर आते ।
यदुनन्दन यह जीवन तरते, सुख पाते ।।१२।।

सुख कन्दल सोना तज जागो हरि जागो,
मुख सुन्दर दिखला कर पापों पर थूको ।
पद अंबुज पकड़े हरि बाला अब तेरे,
मधु मंगल-गुण-कन्दल, छोड़ूँ नहीं आ रे ।।१३।।

जाज्ज्वल्य-नील-रत्नम्

नीलरत्नमहं वन्दे बालिका मन-मंगलम् ।
कालमेघ-निभं कान्तं श्यामलं सुम-कोमलम् ।। १ ।।

भक्त-चित्त-गिरौ जातं शुद्ध-कैवल्य-रूपिणं ।
नृत्य-सुन्दर-सर्वाङ्गं नील-जीमूतमाश्रये ।। २ ।।

राधिका-मन-माणिक्यं श्री भू-शोभित-सुन्दरम् ।
आदि नारायणं देवं आनन्दामृतमाश्रये ।। ३ ।।

शेष-तल्प-गतं दिव्यं श्रीनिवासं परात्परम् ।
गोप-वेष-धरं बालं गोविन्दांङ्कुरं आश्रये ।। ४ ।।

दुग्ध-सागर-मध्यस्थं दुःखहन्तारमीश्वरम् ।
रत्न-कान्ति-लसद्देहं रमारमणमाश्रये ।। ५ ।।

वृन्दावन तले लोलं वृन्दारक गणार्चितम् ।
मन्दार-मंजुलं देवं नन्दानन्दं भजाम्यहम् ।। ६ ।।

देवकी पुण्य-पुंजाङ्गं वसुदेव-वरोदयम् ।
यशोदा-भक्ति-संभूतं यदुनंदनमाश्रये ।। ७ ।।

लीला-लोल-ललामांगं ललना-गण-मध्यगम् ।
बाला-भावित-गोपालं बालरूपिणमाश्रये ॥ ८ ॥

महा मरकतच्छायं मनो-नयन-वर्धनम् ।
बिहार रसिकानन्दं वेणु-गोपालमाश्रये ॥ ९ ॥

नेति-नेति वचो भातं नील-सुन्दर-विग्रहम् ।
वेद-वेदान्त-सिद्धांत-मृग्य-सत्यं भजाम्यहम् ॥१०॥

चराचर-जगन्नाथं चारु-गोपाल-बालकं ।
धरा-धर-धरं धीरं धरानाथमहंभजे ॥११॥

वेणु-वाद्य-रसोल्लासं शोण-नीलाब्ज-लोचनम् ।
पाणि-पद्म-लसत्-पद्मं वदरी-नायकं आश्रये ॥१२॥

पीताम्बर लसन्मध्यं मेखला-मणि-शिंजितम् ।
नादान्त चारिणं नाना वस्तुरूपं नमाम्यहम् ॥१३॥

वल्लवी-वल्लभं वन्द्यं बनमाला-विभूषितम् ।
मल्लिका-दाम-चूडाङ्गम् वल्लीतातं नमाम्यहम् ॥१४॥

इन्द्रनील निभं नाथं इन्द्रगर्वहरं शुभम् ।
इन्दिरा मंदिरं ईशं बन्धुरालकमाश्रये ॥१५॥

कामकोटि जयद्देहं कामतातं कलानिधिं ।
कामपालानुजं कांतं कामितार्थप्रदं भजे ॥१६॥

यमुना-जल-कल्लोल-उल्लासित भुजद्वयम् ।
यमलार्जुन-भेत्तारं यम-संस्तुतं आश्रये ॥१७॥

मीरा मानस माणिक्यं गोधा-मरकतं मणिं ।
बाला-भजित वैदूर्यम् राधा-नीलमणिं भजे ॥१८॥

सीता-रामं जगन्नाथं राधानाथं जनार्दनम् ।
चैतन्य-मन-चैतन्यं चंचला-रमणं भजे ॥१९॥

पार्थ-सारथिं अव्यक्तं पाण्डवानां परं धनम् ।
पांचाली-रक्षणे-दक्षं भारतामृतं आश्रये ॥२०॥

* समाप्त *

परिशिष्ट

श्रीमती हा० कि० वालम्

(एक परिचय)

श्रीमती हा० कि० वालम् सन् १६२२ में, त्रिचिरापल्ली, दक्षिण भारत में पैदा हुई। उनके पिता श्री स्व० एन० हालास्यम् थे जो कि एक प्रसिद्ध कांग्रेस नेता थे। ये गांधीजी के स्वतन्त्रता यज्ञ में पूर्ण भाग लेकर कई बार जेल जा चुके थे। देश प्रेम से आप्लावित हो इन्होंने अपने वकील जीवन को—जो कि बहुत अच्छी तरह चल रहा था—ठुकरा दिया और कष्टों का स्वागत किया। कांग्रेस के अधिकार प्राप्त करने के बाद भी इन्होंने अपने लिए कोई पदवी नहीं स्वीकार की। ये एक प्रसिद्ध वक्ता थे। तामिल और अँग्रेजी के प्रकांड पण्डित थे।

ऐसे वातावरण में पली हुई श्रीमती वालम् जी की धमनियों में देश भक्ति ही प्रवाहित होने लगी। इनको विद्या में

बहुत चाव थी। जबकि ये केवल चौदह-पन्द्रह साल की ही थीं तभी इन्होंने तामिल और संस्कृत साहित्य का गहरा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इतना ही नहीं, इनको इन दोनों साहित्यों में इतना अभ्यास था कि कितनी ही कविताएँ और श्लोक इनको एकदम कण्ठस्थ हो गये और वही अभ्यास आज भी इनको श्रेष्ठ भाषण देने में वरदान का काम करता है।

ब्याह हो जाने के बाद भी ये पढ़ती रहीं और विशेषरूप से बी० ए०, हिन्दी-प्रभाकर, संस्कृत विशारद आदि-आदि परीक्षाएँ पास करलीं।

इनका नैपुण्य इनकी मातृ-भाषा तामिल तक ही सीमित नहीं है। जैसे तामिल साहित्य में ये विशाल ज्ञान रखती हैं वैसे ही हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी साहित्यों में भी रखती हैं।

इनकी कवित्व-शक्ति सन् १९४६-४७ में जबकि भारत दंगों में पीड़ित था तब फूट निकली। वही यह समय था जब भारत को स्वतन्त्रता मिली। उस समय इन्होंने 'मोहन मुरुवल' नामक एक पुस्तक तामिल में प्रकाशित की। यह एक कविता संग्रह था जिसमें गांधी जी द्वारा किये गये स्वतन्त्रता युद्ध की बातें वर्णित थीं। इनकी और एक किताब 'वल्लभर वाझ्कै' (वल्लभ की जीवनी) नामक गद्य रूप में छपी जो सरदार पटेल के बारे में लिखी गई थी। सन् १९५७ में अमर कवि भारती की सुप्रसिद्ध रचना 'पांचाली-शपथ' को इन्होंने अंग्रेजी में कविता रूप में अनुवाद करके प्रकाशित करवाया। बड़े-बड़े साहित्यकारों ने इनकी प्रशंसा की।

सन् १९६० में 'मोहन-मुरली' नामक और एक तमिल

कविता संग्रह निकला। बड़ी प्रशंसा पाई इस किताब ने। इनको 'कविता रत्नम्' 'सकल-कला-वल्ली' 'चतु-भाषा-विदुषी' आदि उपाधियाँ मिलीं।

अब ये हिन्दी में 'मोहन लतिका' (आण्डाल) और तामिल में 'मोहन वाणी' प्रकाशित कर रही हैं।

ये एक अच्छी वक्त्री भी हैं। तामिल और हिन्दी में उच्च कोटि के भाषण देने में दक्ष हैं। तामिल देश ही में नहीं, किन्तु दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, टाटानगर, बुसावल, पूना, कल्याण और देवलाली आदि उत्तर भारत के नगरों में भी ये भाषण देने के लिए निमन्त्रित की गई हैं और साहित्य सुषमा इन जगहों में फैलायी हैं। सन् १९५३-५७ तक ये पूना में 'कलै कभ्रगम्' नामक दक्षिण भारतीय संस्था का अध्यक्षा रह चुकी हैं। वहाँ साहित्य सेवा काफ़ी मात्रा में कर चुकी हैं। पूने में रहते हुए ये वहाँ के दक्षिण भारतीयों के हर एक काम में शामिल हुई हैं। १९५८-६१ तक यह देवलाली साउथ इन्डियन असोसियेशन की अध्यक्षा रह चुकी हैं। पूना भण्डारकार ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट और तामिल रैटर्स असोसियेशन, और पी० इ० एन० बम्बई की सदस्या हैं। अखिल भारत रेडियो द्वारा भी इनकी कविताएं और भाषण प्रसारित हो चुके हैं।

इनकी दिलचस्पी साहित्य की हर एक शाखा में है। इन की भक्ति-भावना, देश-प्रेम, और प्रकृति-प्रेम इनकी रचनाओं में प्रचुर मात्रा में देखने को मिलते हैं।

इनकी अप्रकाशित रचनाएँ बहुत हैं। ५०० से अधिक

तामिल कविताएँ, ५० संस्कृत, लगभग ५० अंग्रेजी, ५० से अधिक हिन्दी रचनाएँ अभी अप्रकाशित ही हैं। इनकी लम्बी-बड़ी रचनाओं का परिचय नीचे दिया जाता है।

तामिल-कविता

नाम	सूचना
बाल नील मणि	भागवत
शेंकमलकण्णन् शेवि यमुदम	कृष्णकर्णामृत (लीला शुक)
विण्णप्प मालै	विनय पत्रिका (तुलसी)
शत्रुघ्न चरित्रम्	
भरत प्रतापम्	
एंबिरान ऐम्बदु	
अन्पु पोर शरडु	नारद भक्ति सूत्र
वडिवभ्फगि तिरू आयिरम्	ललिता सहस्त्रनाम
त्तिरूमाल तिरू आयिरम्	विष्णु सहस्त्रनाम
अरवभ्फि	बुद्ध का धम्मपद
अभ्फगिन अलै	शंकर की सौन्दर्य लहरी

गद्य

भागवत कनि	शुक-सूरदास और विष्णुचित्त की तुलनात्मक समीक्षा।

नाटक

दैव चिलंबु	शिलप्पधिकारम् (इलंको)

करुणाँ मुगिल — बुद्ध की जीवनी
मांगनि माणिक्कम् — तिलकवती की जीवनी

समालोचना

रामायण रत्नाकरम् — बाल्मीकि, कंब और तुलसी की तुलना

संस्कृत-कविता

पुष्प ज्योति
तरंगित गंगा

अंग्रेजी

अवर लीडर — श्री जवाहर को जीवनी

हिन्दी कविता

"पाञ्चाली शपथ"
भारती की "कोयल"
भारती की "कविताएँ"
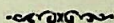
स्थायी पता	वर्तमान पता
"सुकिरा"	ए—२०६
७६, आण्डार स्ट्रीट्	डिफ़ेंस कालोनी
त्रिचरापल्ली (२)	नई दिल्ली (३)

मोहन-मुरुवल-कुछ प्रशंसाएँ

१. यह रचना गान्धीय गन्ध से महक रही है ।

—आस्थान कवि श्री वे० रामलिंगंपिल्लै ।

२. हर एक भाग में जो विषय लिखा जा रहा उसके सदृश विविध-छन्द, नाना विधोंसे नव-रसों को अच्छी तरह प्रकाशित करनेवाले छन्द और अलंकार इस रचना को अलंकृत कर रहे हैं । कवयित्री को बधाई ।

—मधुरा तामिल संघम् ।

३. सुन्दर कविताएँ तामिल को प्राप्त हुई हैं ।

—रसिकमणि टी० के० चिदम्बर नाथ मुदलियार ।

४. ये कविताएँ अर्थ-गौरव, रस-गौरव, अलंकार और छन्द गौरव से मिलकर गरिमामयी प्रभावशालिनी हो राज रही हैं ।

— द्राविड कविमणि मुत्तुस्वामी अय्यर ।

५. लेखिका श्रीमती वालम् की कवित्व-शक्ति सराहने योग्य है ।

—आनन्द विकटन् ।

६. यह कवयित्री अपनी तरुणपन में ही इतने अच्छे-अच्छे गुणों, कलाचार-सदाचार और कविता-कल्पना-शक्ति-

---

तमिल/अंग्रेजी से अनूदित किये गये हैं

युक्त कला सौन्दर्यों के साथ विराज रही है यह तमिल देश के लिए बड़े गौरव की बात है। मुद-मंगल-मय, मंजुल-मनोहर शैली में सुन्दर कविता रचनेवाली, माधुर्य-मनोहारिणी हृदयहारिणी कविता गानेवाली इस कवि-अंगना की जय बोलते हैं। बधाई देते हैं।

—श्री० एम० षण्मुखसुन्दरम्। पुस्तक विमर्शन, आल इंडिया रेडियो, मदरास

७. अच्छा ग्रन्थ है, निर्मल ग्रन्थ है। नाना छन्दों में नाना विषयों को प्रतिपादित करनेवाला ग्रन्थ है। तामिल जनता पढ़कर लाभ उठा सकती है। प्रेमीबन्धुओं को इसे पुरस्कार रूप में दे सकती है।

—श्री० वि० जि० श्रीनिवासन्, मदुरा

८. पहली दृष्टि में ही मुझे न केवल तुम्हारे साहित्य और भाषा-ज्ञान का, तुम्हारी मधुर शैली का, किन्तु सच्ची कवित्व का, लय-ज्ञान का भास हुआ।

—डा० सि० पि० रामस्वामी अय्यर।

९. ये कविताएँ उच्चतम कोटि की कवित्व-शक्ति, ऊँची देश-भक्ति, अगाध-साहित्य-ज्ञान और विस्तृत भाषा-ज्ञान को प्रकट कर रही हैं और कुछ कविताएँ विशेषतया वे जो नेहरू जी की जीवन की घटनाओं को वर्णित कर रही हैं, हमारे युवक और युवतियों को कण्ठस्थ करने लायक हैं, वे जरूर हमारे भारत के बच्चों के दिलों में देश-भक्ति का दीप चमका देंगी।

—दि इंडियन् एकस्प्रस्।

मोहन मुरली—कुछ प्रशंसाएँ

१. यह पुस्तक सच्चे हृदय के उद्‌गारों से भरपूर है और वे पढ़ने वाले को आनन्द प्रदान करते हैं। भगवान् कृष्ण तुमको भक्ति, भुक्ति और मुक्ति प्रदान करें। हरि ओं तत्सत्।

—स्वामी शिवानन्द

२. 'मोहन मुरली' अन्त:करण की उज्ज्वल आवाज है और प्रकृति-छटा बहुत सुन्दर रूप से वर्णित है। नई कविता के लोक में हम इसको हार्दिक स्वागत देते हैं।

—'दि काल् डिवैन'

३. तुम्हारी 'मोहन-मुरली' जाज्वल्यमान साहित्य-पुष्पमाला है जो नैतिक, सामाजिक, आत्मिक, पारमार्थिक और परमात्म-वाद-तात्विक ज्योति से जगमगाती और इन सबका सुन्दर सामंजस्य दिखाती है। साहित्य-श्रेणी में हर एक सीढ़ी और पीढ़ी को, आबाल-वृद्ध-वनिताओं की जरूरतों को पूर्णतया पूर्ण करती है। ये कविताएँ बड़ी नलिनता से और सौन्दर्य-युक्त-लालित्य के साथ गुम्फित की गई है जो हमारे बाल-बच्चों को उनके हितार्थ पढ़ाई और सिखाई जानी चाहिए।

—श्री ता० तिरुमलाचारी

४. यह पुस्तक पीढ़ी-दर-पीढ़ी पढ़ी जायगी। भगवान् ने तुम्हारी लेखनी में ऐसा जादू भर दिया है कि तुमने भारत के मन्दिरों को, कला-प्रासादों को सदैव के लिए अमर बना दिया।

—श्री ए० महादेव अय्यर

५. इनकी रचनाओं को पढ़ते ही वाचक महसूस करने लगता है कि जो सुनना चाहता है उसके लिए भगवान् यहाँ बोल रहा है।

—स्वामी श्री वेंकटेश्वरानन्द

६. यह मोहन-मुरली' नव-रत्न-निर्मित हारावली है।

—श्री एस० आर० रामस्वामी—'दिनमणि' बुक रिव्यू

७. तामिल साहित्य-क्षेत्र में इनका जो विशाल और विस्तृत ज्ञान है वह इनकी रचना में हर एक जगह में झलक रहा है।

—'भारती'—बुक रिव्यू

८. कविता-क्षेत्र में आपका एक विशिष्ट स्थान है।

—श्री सि० आर० अय्यंगार

मदरासी सम्मेलनी जमशेदपुर

९. अमर-साहित्य-वल्लरी में आपकी रचना एक नित्य-विकसित सुगन्ध मनोरम पुष्प है। मन्द मारुत चल रहा है। चाँदनी छिटक रही है।

—श्री आर० पी० संन्यासी, पराशक्ति आश्रम

१०. पढ़ने वाले इन विविध छन्दों की तरंगावलि में डूबकर अपने को भूल जाएँगे। कभी इनको आलस्य न लगेगा।

जनता चाव से पढ़ने लायक कविता-संग्रह है यह ।

—'शिवाजी'—बुक रिव्यू

११. यह 'मोहन-मुरली' एक अद्वितीय रचना है । अपार-अद्भुत साधना है ।

—श्री पी० एम० एन० स्वामी

१२. 'मोहन-मुरली' पढ़कर हर्षातिरेक से लिख रहा हूँ । आण्डाल के बाद कविता-क्षेत्र में महिला महिमा लुप्त नहीं हुई । बच्चे की तरह निर्मल कुतूहल से प्रकृति को देखकर प्रकृति सुन्दरी का वर्णन करते हैं आप । अद्भुत कविता है यह । सब सौन्दर्य, सौजन्य और सौलभ्य मण्डित, सौकुमार्य से परिपूर्ण हृदयग्राही कविताएँ हैं ।

—श्री ना० पार्थसारथी—"मणि-वण्ण"

१३. प्यारे बच्चे लोग
भारतीय - धन ।
भारत की प्रभा
फैलाओगे तुम ।।

यह कविता बच्चों पर आपका जो स्वाभाविक प्रेम और वाँछा है उसको प्रकाशित कर रही है । जहाँ भी रहे अपनी कला, अपनी भाषा, अपना देश और अपनी जनता के लिए सदा सेवा करने वाली आपकी कवित्व शक्ति दिन दूना रात चौगुना बढ़े ।

—अल-वल्लियप्पा चिल्ड्रन्स रैटर्स एसोसियेशन, मदरास

१४. भक्ति, प्रकृति और कला सब मिलकर माधुर्यमयी पंचामृत की तरह रुच रही है यह मोहन-मुरली। कुतूहल, कल्पना और वर्णन, अति मनोहर शैली जगह-जगह हमको आनन्द मग्न करती हैं। बच्चों के जैसे कौतूहल, उत्कट-कविता-वेग के साथ इनकी रचना बन पड़ी है।

—'पढ़ के देखिए'—'कलकी'

१५. मिश्री हो या फल का रस, सागर जैसे आनेवाली करुणा रस हो या तामिल का सार, कविता हो या कला का सौन्दर्य, भक्ति की बाढ़ या छन्द का मन्द-मारुत, प्रेम कलानिधि हो या इन सबकी एक रूपिणी प्रतिमा मोहन-मुरली।

—कवि चोक्कलिंगम् पलनी

---

१. तमिल/अंग्रेजी से अनूदित किये गए हैं।